Chapter. 4

SMT. HANSA MEHTA

: चतुर्थ अध्याय :

: महाभारत की कथावस्तु पर आधारित डा. कोहली के उपन्यास :

: चतुर्थ अध्याय :

: महाभारत की कथावस्तु पर आधारित डा. कोहली के उपन्यास :

प्रास्ताविक :

रामायण और महाभारत ये दो महाग्रन्थ भारतीय साहित्य के अमूल्य ग्रन्थ हैं । हमारी तमाम भाषाओं में जो साहित्य लिखा गया है, उस पर इन दो महाग्रन्थों का प्रत्यक्ष वा परोक्ष प्रभाव देखा जा सकता है । अनेक कवियों और लेखकों ने इन दो ग्रन्थों से वस्तु लेते हुए उन पर अनेक काव्यों और काव्येतर रचनाओं का सृजन किया है । अतः जहां तक भारतीय साहित्य का प्रश्न है, इनको हम भारतीय-साहित्य के उपजीव्य ग्रन्थ कह सकते हैं । अन्य अनेक लेखकों की भांति डा. नरेन्द्र कोहली ने भी इन दो ग्रन्थों को आधार बनाकर उपन्यासमालाओं की सृष्टि की है । पिछले अध्याय में हमने

डा. कोहली के रामायण की कथावस्तु पर आधारित "दीक्षा" , "अवसर" , " संघर्ष की ओर " और "युद्ध" इन चार उपन्यासों पर विचार किया था । यहां पर हमारा उपक्रम डा. कोहली के उन उपन्यासों पर विचार करने का है जो महाभारत की कथावस्तु पर आधारित हैं । रामायण की तुलना में महाभारत का व्याप और भी अधिक फैला हुआ है । हमारे यहां कहा गया है कि "युद्धस्य कथा रम्या " और अनेक मानों में महाभारत को युद्ध का ही पर्याय माना जाता है । यद्यपि डा. कोहली का मंतव्य है कि सन् 1971 में बांगलादेश की मुक्ति हेतु जो भारत-पाकिस्तान युद्ध हुआ था , वह कई दृष्टियों से रामायण के युद्ध के निकट पड़ता है , तथापि समग्रतया देखा जाय तो महाभारत ही युद्ध का पर्याय बन गया है । डा. नरेन्द्र कोहली ने महाभारत के युद्ध को यथार्थतः ही "महासमर" कहा है । आज हम जिसे विश्वयुद्ध की संज्ञा देते हैं , प्रायः ऐसा ही यह महासमर या महासंग्राम हुआ होगा जिसमें देश-विदेश के कई राजाओं ने भाग लिया होगा । यद्यपि डा. कोहली ने इन उपन्यासों को रामायण पर आधृत उपन्यासों की भांति अलग-अलग शीर्षक दिए हैं , तथापि इन्होंने उपशीर्षक के रूप में "महासमर" शब्द को रखा है , यथा- "महासमर भाग-1 " से " महासमर- भाग-8 " । इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं — "बंधन" , "अधिकार" , "कर्म" , " धर्म" , "अंतराल" , प्रच्छन्न " , " प्रत्यक्ष" और "निर्बन्ध " । प्रथम उपन्यास है "बंधन" और अंतिम है -- " निर्बन्ध " । इस प्रकार यहां बंधन से मुक्ति तक की यात्रा है । इस अध्याय में प्रारंभ में पृष्ठभूमि के अन्तर्गत महाभारतकाव्य पर संक्षेप में प्रकाश डाला जाएगा और उसके उपरान्त क्रमशः उक्त उपन्यासों पर विचार किया जायेगा ।

महाभारत की पृष्ठभूमि :

विशाल व महान भारतीय संस्कृति को जानने-समझने के लिए हमें दो द्वारों से गुजरना होगा । ये दो द्वार हैं -- रामायण

और महाभारत । तृतीय अध्याय में रामायण पर विचार-विमर्श हो चुका है , अब इस अध्याय में महाभारत पर विचार करने का हमारा उपक्रम रहेगा । अठारह पर्वों का यह "आर्षकाव्य" हमारा धर्मग्रन्थ भी है , स्मृति भी है , शास्त्र भी है , आख्यान भी है और काव्य भी है । इसीलिए तो उसे कुछ विद्वान "पंचम वेद " भी कहते हैं । सूत और मागधों में जो युद्धगीत गाये जाते थे , उन्हें "नाराशंसी" गाथा कहा जाता था । इन्हीं "नाराशंसी" गाथा से आगे चलकर एक कथा निर्मित हुई , जिसे "जय" कहते हैं । इस "जयगाथा" का विस्तार होते-होते वह 24 हजार श्लोक का "भारत" काव्य हो गया । तदुपरांत कालान्तर में उसमें अनेक आख्यान , उपाख्यान , कथानक , उपकथानक मिलते गये । जैसे अनेक नदियाँ समुद्र में मिलकर उसे "महासागर" बना देती हैं , ठीक उसी तरह यह काव्य भी आज "महाभारत" के रूप में जाना जाता है ।[1] उसके संदर्भ में एक उक्ति कही जाती है कि जो इसमें है वह सर्वत्र है , और जो इसमें नहीं है वह कहीं भी नहीं है । इस प्रकार इस काव्य में एक प्रकार की सार्वकालिक प्रासंगिकता हमें प्राप्त होती है जिसके कारण यह कथा या गाथा हमेशा तरोताजा लगती है । बरसों तक यह ग्रन्थ हमारे देश की धर्मनीति , अर्थनीति , राजनीति और अध्यात्म को प्रभावित करता रहा है । हमारे यहाँ जन-साधारण में धार्मिक या भक्त उसे माना जाता है , जिसे रामायण - महाभारत की कथा मालूम हो और जो बात-बात में उसके उदाहरण देता हो ।

महर्षि वेदव्यास प्रणीत महाभारत भारतीय संस्कृति के आद्य उपजीव्य ग्रन्थों में से एक है । वह भारतीय ज्ञान , विज्ञान और इतिहास का विश्वकोश माना जाता है । "महाभारत " शब्द दो शब्दों के योग से बना है — महा + भारत । जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है इसका प्रथम नाम "जय" था । महाभारत के मंगलाचरण के श्लोक , प्रत्येक पर्व के वंदना श्लोक तथा महाभारत के अंतिम श्लोक में "जय" शब्द का उल्लेख हुआ है । इस संदर्भ में

लोकमान्य तिलक जैसे विद्वानों का अभिमत है कि प्रस्तुत महाकाव्य में कौरवों पर पांडवों की विजय होने से उसका नाम "जय" रखा गया होगा ।[2] कल्याणशंकर शास्त्री अपने महाभारत पर कुछ विचार" लेख में बताया है कि इस ग्रन्थ में बारंबार "जय" शब्द का जो प्रयोग हुआ है उससे "संसार को जीतनेवाला" ऐसा अर्थ द्योतित होता है ।[3] किन्तु उसका मुख्य प्रयोजन धर्म की संस्थापना बताया गया है और उसमें अनेक स्थानों पर "यतोधर्मस्ततो जयः " का उल्लेख किया गया है, अतः उसमें धर्म की जय होती है, यह अर्थ भी अभिप्रेत है ।[4] महर्षि व्यास की आज्ञा से वैशम्पायन ने जो कथा सुनायी, उसमें उन्होंने स्वरचित कुछ उपाख्यान और जोड़ दिए । इस प्रकार "जय" काव्य का रूपान्तर "भारत" के रूप में हुआ ।[5] कौरव-पांडव भरतवंशी थे, अतः भरतवंशियों के इस महायुद्ध का नाम "भारत" रखा गया हो, यह भी संभव है । बाद में उग्रश्रवा सौति ने उसमें और कुछ उपाख्यान मिला दिये और उनके द्वारा परिवर्द्धित काव्य "महाभारत" कहलाया । जो भी हो, आज के विद्वान "भारत" और "महाभारत" इन दोनों रूपों का स्वीकार करते हैं । कृष्णद्वैपायन व्यास द्वारा प्रकट होने के कारण उसे "कार्ष्णवेद " भी कहते हैं ।[6] ग्रन्थ का यह "महाभारत" नाम कितना सार्थक और सटीक है, उसके सन्दर्भ में तो महाभारत में ही कहा गया है —" देवताओं ने महाभारत को चार वेदों के साथ तराजू पर तौला, उस समय सम्पूर्ण वेदों से जब यह महान सिद्ध हुआ तो उसे महाभारत कहा जाने लगा ।"[7] इस प्रकार "जय", "भारत" और "महाभारत" ये तीनों ही नाम पर्यायवाची हैं ।

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है महाभारत काव्य की रचना किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं हुई है । अलग-अलग समय में अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा उसे संस्कारित व परिवर्द्धित किया गया है । कुछ विद्वानों का ऐसा मंतव्य है कि "व्यास" कोई व्यक्तिवाची संज्ञा न होकर जातिवाची संज्ञा है और महाभारतकारों को "व्यास" पद

सम्मानित किया जाता होगा । महाभारत के युद्धकाल और रचनाकाल के संदर्भ में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है ।

श्री इन्द्रनारायण द्विवेदी महाभारत का रचनाकाल इ.स. पूर्व 3138 और ई.स. 3126 के बीच का मानते हैं ।[8] लोकमान्य तिलक तथा कुछ अन्य विद्वान महाभारत का रचनाकाल इ.स. पूर्व 1400 के आसपास निश्चित करते हैं ।[9] डा. सत्यकेतु विद्यालंकार महाभारत-काल को सन् 1424 ई. पू. स्वीकृत करते हैं ।[10] किन्तु महाभारत के रचनाकाल को लेकर पाश्चात्य विद्वानों के अभिमत कुछ भिन्न हैं । डा. विंटेरनित्स के मतानुसार महाभारत का रचनाकाल एक नहीं है ।[11] क्रिश्चियन लासेन के अनुसार महाभारत का रचनाकाल सन् 460 ई.पू. से अधिक प्राचीन नहीं हो सकता । इसके प्रमाण के लिए उन्होंने बताया है कि अश्वलायन गृह्यसूत्र में "भारत" के साथ "महाभारत का उल्लेख मिलता है और अश्वलायन गृह्यसूत्र का निर्माणकाल 350 ई.पू. का है । अतः महाभारत उसके पूर्व सौ - सवा सौ साल पहले का होगा , ऐसा अनुमान किया जा सकता है ।[12] जर्मन विद्वान वेबर के मतानुसार मूल महाभारत का रचनाकाल ईसा पूर्व तीसरी से पहली शती के बीच का रहा होगा । ध्यान रहे यह रचनाकाल मूल (Original) महाभारत का है । वर्तमान महाभारत का काल तो उसके बाद का ही हो सकता है ।[13] चिंतामणि विनायक वैद्य महोदय वर्तमान महाभारत का रचनाकाल ई.स. पूर्व 320 से 200 के बीच का मानते हैं ।[14] डा. नगेन्द्र द्वारा संपादित भारतीय साहित्यकोश के अनुसार इसका रचनाकाल 400ई.पू. है ।[15] चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने अपने ग्रन्थ "महाभारत " की भूमिका में लिखा है —" सेन्च्युरिज़ एगो , इट वाज़ प्रोक्लेइम्ड आफ द "महाभारत" , व्हाट इज़ नोट इन इट , इज़ नोव्हेर ". आफ्टर ट्वेण्टीफाइव सेन्च्युरीज़ , वी केन यूज़ द सेइम वर्ड्‌स़ अबाउट इट."[16] राजाजी पच्चीस सदियों की बात करते हैं , उस गणना से देखें तो महाभारत का रचनाकाल 400-500

ईसा पूर्व का ठहरता है । बहरहाल मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि महाभारत की रचना दो-ढाई हजार साल पहले हुई होगी ।

इस समय वर्तमान महाभारत के दो प्रमुख संस्करण उपलब्ध होते हैं । एक उत्तरभारतीय संस्करण है और दूसरा दाक्षिणात्य । इन दोनों संस्करणों की हस्तलिखित प्रतियां भारत तथा योरोप में मिलती हैं । हमारे यहां जितने भी संस्करण मिलते हैं, उन सबको आधार बनाकर " भांडारकर प्राच्य विद्या संशोधन मंदिर, पूणे " ने एक सर्वमान्य संस्करण निकाला है । रामायण पर ऐसा ही कार्य " प्राच्य विद्या मंदिर, बड़ौदा, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय" से हुआ है । लेकिन महाभारत के सभी संस्करणों में गीता प्रेस गोरखपुर वाला संस्करण अधिक उपयुक्त है, उसमें प्रायः सभी प्रचलित महाभारतीय प्राचीन संस्करणों का आधार लिया गया है । गीता प्रेस का महाभारतीय संस्करण 6 खण्डों में प्राप्त है, जिसमें महाभारत की कुल श्लोक संख्या एक लाख दो सौ दश है । महाभारत के अनुक्रमणिका अध्याय में दी गयी सूची के अनुसार उसमें कुल 1623 अध्याय हैं । [17]

महाभारत में सर्ग के स्थान पर "पर्व" शब्द प्रयुक्त हुआ है । महाभारत की कथा 18 पर्वों में कही गई है । ये अठारह पर्व इस प्रकार हैं — आदि पर्व, सभापर्व, वनपर्व, विराट पर्व, उद्योगपर्व, भीष्मपर्व, द्रोणपर्व, कर्णपर्व, शल्यपर्व, सौप्तिक पर्व, स्त्री-पर्व, शान्तिपर्व, अनुशासन-पर्व, आश्वमेधिक पर्व, आश्रमवासिक पर्व, मौसल पर्व, महाप्रस्थानिक पर्व और स्वर्गारोहण पर्व । इन अठारह पर्वों के अतिरिक्त सौ अवांतर पर्व भी हैं । डा. वासुदेव-शरण अग्रवाल के मतानुसार सौ पर्वों के विभाग के स्थान पर अठारह पर्वों का विभाग गुप्तकाल में हुआ होगा । [18] इस तरह हम देख सकते हैं कि महाभारत में रामायण की तुलना में अधिक उपाख्यान हैं । अतः विद्वानों का अनुमान है कि यह कोई एक व्यक्ति की रचना नहीं है । कई शताब्दियों तक उसमें प्रक्षेप और परिवर्तन होते गए हैं और आज वह एक विकसनशील महाकाव्य (Epic of growth) के रूप में

हमारे सामने है ।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी महाभारत के संदर्भ में कहते हैं — " भारतीय दृष्टि से महाभारत पांचवा वेद है , इतिहास है , स्मृति है , शास्त्र है और साथ ही काव्य है । आजतक किसी भारतीय पण्डित या आचार्य ने इसकी प्रामाणिकता पर संदेह नहीं किया है । कम से कम दो हजार वर्षों से यह भारतीय जनता के मनोविनोद, ज्ञानार्जन , चरित्र-निर्माण और प्रेरणा-प्राप्ति का साधन रहा है ।" 19 चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने इसके संदर्भ में जो कहा है उससे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी की ही बात की पुष्टि होती है — " The Mahabharata is not a mere epic; it is a romance, telling the tale of heroic men and women and of some who were divine; it is a whole literature in itself, containing a code of life; a philosophy of social and ethical relations, and speculative thought on human problems that is hard to rival; but, above all, it has for its core the Gita." 20

20

महाभारत कैसे लिखा गया उसके संदर्भ में भी एक कथा प्राप्त होती है । द्वैपायन ऋषि (व्यास) महाभारत नामक ग्रन्थ की मन-ही-मन रचना करके चिंतित थे कि किस भांति इसका प्रचार तथा प्रसार किया जाये कि एक दिन अचानक ब्रह्मा स्वयं उनके निवासस्थान पर पधारे । उन्होंने व्यास मुनि से कहा कि वे अपना ग्रन्थ लिखवाने के लिए गणेशजी का स्मरण करें । स्मरण करते ही गणेशजी वहां उपस्थित हुए । उन्होंने महाभारत ग्रन्थ को लिपिबद्ध करना स्वीकार किया , किन्तु इस शर्त पर कि क्षण भर के लिए भी उनकी लेखनी नहीं रुके ।

व्यास ने जब इस बात को मान लिया××××××××× लेकिन साथ ही गणेशजी से एक वचन ले लिया कि बिना अर्थ समझे वे एक भी श्लोक नहीं लिखेंगे । अतः व्यासजी को जब-जब कुछ विचारना होता था, तो कोई कूट श्लोक बोल देते थे । गणेशजी जब तक उसका अर्थ समझते वे अगला श्लोक रच लेते थे । इस प्रकार देखा जाये तो गणेशजी हमारी परंपरा के प्रथम आशुलिपिक ठहरते हैं । [21]

संस्कृत महाभारत के अतिरिक्त प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में महाभारत की रचना हुई है जिनमें सारलादास तथा कृष्णसिंह कृत उड़िया महाभारत, काशीराम दास द्वारा अनूदित बंगला महाभारत, माधव स्वामी विरचित मराठी महाभारत तथा तुंचतु ए. ष्टुत्तच्छन कृत मलयालम महाभारत आदि उल्लेखनीय हैं । [22] दक्षिण-पूर्व ए एशिया में इण्डोनेशियाई भाषा में श्री सालेह ने महाभारत कथा को संकलित किया है जिसका हिन्दी अनुवाद डा. चन्द्रदत्त पालीवाल ने किया है । इसके संदर्भ में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के भूतपूर्व निदेशक डा. रणवीर रांगा लिखते हैं — "यह पुस्तक मात्र महाभारत ही नहीं प्रत्युत दक्षिण-पूर्व एशिया के लोक-जीवन, जन-विश्वासों, चिन्तन-मनन, सभ्यता व मूल्यों को भी उजागर करती है ।" [23]

इण्डोनेशिया में रामायण की तुलना में "महाभारत" अधिक लोकप्रिय है । यहां तक कि अठारहवीं शती ईस्वी के अन्त तक राम-लक्ष्मण तथा कृष्ण-अर्जुन में अभेद स्थापित हो गया था और लोग कृष्ण को राम का और अर्जुन को लक्ष्मण का अवतार मानने लगे थे । इण्डो-नेशियाई भाषा में महाभारत पर आधारित वायांग नाटकों के माध्यम से कम से कम 150 विभिन्न छाया-नाटक धार्मिक एवं सामाजिक अवसरों पर प्रस्तुत किए जाते हैं । इनको वहां की भाषा में "लाकोन" {प्रसंग} कहते हैं । अर्जुन और सुभद्रा का विवाह, पांडवों का एकचक्रा नगरी में रहना, घटोत्कच का जन्म आदि अनेक रोमांचकारी घटनाओं से सम्बद्ध "लाकोन" को वहां के लोग रात-रात भर बैठकर देखते रहते हैं और उनकी अनेक काव्य-पंक्तियां उनकी जिह्वा पर होती हैं । [24]

महाभारत में वर्णित विषयों के संदर्भ में डा. जे. आर. बोरसे लिखते हैं -- " महाभारत संस्कृत साहित्य का एक बृहद् विश्वकोश है । उसके सम्बन्ध में महर्षि व्यास की ही यह उक्ति प्रसिद्ध है -- "यदि हास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्तिन तद् क्वचिता " अर्थात् जो महाभारत में है वही नाना रूपों में सर्वत्र हैं , जो इसमें नहीं है वह कहीं भी नहीं है । वेदव्यासजी ने स्वयं अपनी संहिता के विषयों का निरूपण ब्रह्माजी से किया था , जो इस प्रकार है -- " इसमें वैदिक और लौकिक सभी विषय हैं । इसमें वेदांगसहित उपनिषद , वेदों का क्रिया-विस्तार , इतिहास , पुराण , भूत-भविष्य और वर्तमान के वृतान्त , बुढ़ापा , मृत्यु , भय , व्याधि आदि के भाव-अभाव का निर्णय , आश्रम और वर्णों का धर्म , पुराणों का सार , तपश्चर्या , ब्रह्मचर्य , पृथ्वी , चन्द्र , सूर्य , ग्रह , नक्षत्र , तारा और युगों का वर्णन , ऋग्वेद , यजुर्वेद , सामवेद , अथर्ववेद , अध्यात्म , न्याय , शिक्षा, चिकित्सा , दान , पाशुपत धर्म , देवता और मनुष्यों की उत्पत्ति, पवित्र तीर्थ , पवित्र देश , नदी , पर्वत , वन , समुद्र , पूर्वकल्प, दिव्यनगर , युद्धकौशल , विविध भाषा , विविध जाति , लोक-व्यवहार और सबमें व्याप्त परमात्मा का भी वर्णन किया है । " महाभारत का मुख्य विषय तो कौरव-पांडवों के जीवन और युद्ध का ऐतिहासिक निरूपण है । इसके अध्ययन से केवल तात्कालिक , सामाजिक , पारिवारिक , वैयक्तिक , धार्मिक , सांस्कृतिक , राजनीतिक , शैक्षणिक , भौगोलिक परिस्थितियों का परिचय ही प्राप्त नहीं होता , अपितु धार्मिक , सामाजिक , राजनीतिक तत्वों का सांगोपांग ज्ञान भी प्राप्त होता है ।" 25

इस प्रकार यह समाजशास्त्र , धर्मशास्त्र , नीतिशास्त्र , न्यायशास्त्र का ग्रन्थ भी सिद्ध होता है । व्यक्ति-जीवन या समाज-जीवन की कोई ऐसी समस्या न होगी जिसका निरूपण और समाधान इसमें न हुआ हो । उदाहरणतया युधिष्ठिर का यह कहना कि लड़ाई जब हमारे घर की हो तो वे सौ और हम पांच हैं , किन्तु लड़ाई जब

किसी बाहरवाले के साथ होती है तो हम एक सौ पांच हैं । यह बात घर-परिवार के लिए भी , और समूचे राष्ट्र के लिए भी कितनी उपयुक्त और उपयोगी है ।

डा. बोरसे महाभारत के महत्व के संदर्भ में लिखते हैं — "इसके अनेक उपाख्यानों में धर्म के विविध रूपों की व्याख्या की गई है । उदाहरण के लिए वनपर्व में द्रौपदी सत्यभामा को पत्नी-धर्म की शिक्षा देती है । ... महाभारत के भीष्म पर्व में श्रीकृष्ण युद्ध-स्थल में गीता के रूप में उपदेश देते हैं । उसमें धर्म संस्थापना ही उनके जीवन का हेतु बताया है । महाभारत में श्रीकृष्ण के अतिरिक्त शिव को भी स्थान दिया गया है , साथ ही वेदांत , सांख्य , योग , पांच रात्र , पाशुपत आदि अनेक मतों का एकीकरण भी हुआ है । धर्म की एकता प्रतिपादित करने के लिए यज्ञ , याग , तीर्थ , उपवास , अहिंसा , यज्ञ आदि को भी स्थान दिया गया है । ... जीवन के कार्य-क्षेत्र में क्या उचित और क्या अनुचित है ? इसका निरूपण शांतिपर्व में हुआ है । उद्योग पर्व के अन्तर्गत विदुरनीति और नीतिधर्म का विस्तृत विवेचन है । इसमें व्यवहार , चातुर्य , लोकनीति , समाज-नीति के व्यावहारिक उपदेश हैं । महाभारत में राजनीति का भी व्यापक विश्लेषण हुआ है । मुख्यतः राज्य व्यवस्था , राजा के कर्तव्य , राजा विषयक तत्कालीन मान्यता आदि पर विस्तृत प्रकाश पड़ता है । प्रजा के प्रति , ब्राह्मणों और अन्य वर्णों के प्रति राजा के कर्तव्य के विवेचन के अलावा शासन की अनेक समस्याओं पर गंभीर विचार किया गया है । राजा के द्वारा बलसंचय , सेना , सेनापति , दुर्ग , गुप्तचर आदि की व्यवस्था का राजतंत्रीय दृष्टि से विवेचन किया गया है । वन में जाते समय ~~धृतरा~~ धृतराष्ट्र की राजनीतिक शिक्षा में कूटनीति की अनेक बातों पर विचार हुआ है । उपर्युक्त विवेचन के आधार पर महाभारत को राजनीतिशास्त्र के रूप में मान्यता देना समीचीन है ।"[26]

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार अमृतलाल नागर महाभारत की इस कथा को बहुत संक्षेप में सरल शब्दों लिखा है । उसकी भूमिका में वे लिखते हैं — " महाभारत भारतीय धर्म-दर्शन-संस्कृति का महाग्रन्थ है । आज की भाषा में इसे विश्वकोश भी कह सकते हैं । इसमें एक कथा भी चलती है जो भारत के प्राचीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय होने के साथ-साथ मानव-चरित्र के जबरदस्त ऊंच-नीच को बड़े नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करती है । मैंने जब-जब भी इसे पढ़ा , इससे कुछ नया ही प्राप्त किया ।" [27]

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में महाभारतीय मिथकों को आधार बनाकर अनेक प्रबंध-काव्यों , खण्डकाव्यों तथा गीति-नाट्यों का प्रणयन हुआ है । यहां केवल उनका नामोल्लेख मात्र किया जा रहा है । प्रमुख प्रबंध काव्यों में आनंदकुमार कृत "अंगराज" , मैथिलीशरण गुप्त विरचित "जयभारत" , "रामधारीसिंह दिनकर प्रणीत "रश्मिरथी" और " कुरुक्षेत्र " , श्रीनाथ द्विवेदी कृत सारथी कृष्ण " , लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत "सेनापति कर्ण " , रामकुमार वर्मा कृत "एकलव्य " , अवधनारायण शर्मा कृत "पार्थपत्नी महासती द्रौपदी" , डा. रत्नचंद्र शर्मा कृत "अश्वत्थामा" , रामावतार अरुण पोद्दार कृत "कृष्णांबरी" , रामसहायलाल श्रीवास्तव कृत "श्रीकृष्ण-चरित" , बैजनाथ शुक्ल "भव्य" कृत "द्रौपदी" तथा "कर्ण" , डा. इन्द्रपालसिंह "इन्द्र" प्रणीत "द्रोणाचार्य" , डा. किशोर काबरा कृत " उत्तर-महाभारत" आदि की गणना कर सकते हैं । इसके अतिरिक्त महाभारत के विषय-वस्तु पर कुछ खण्डकाव्यों की रचना भी हुई है , जिनमें निम्नलिखित मुख्य है — केदारनाथ मिश्र कृतx " प्रभात" कृत "कर्ण " , मोहनलाल अवस्थी "मोहन" कृत "महारथी " , मैथिलीशरण गुप्त कृत "हिडिंबा" , रामगोपाल रुद्र कृत "द्रोण" , उग्रनारायण मिश्र कृत शल्यवध" , डा. रांगेय राघव कृत " पांचाली" , गुरु पद्म सेमवाल कृत "दानवीर कर्ण " , नरेन्द्र शर्मा कृत " द्रौपदी" , विनोदचन्द्र पांडेय कृत "गुरु दक्षिणा" , उदयशंकर भट्ट कृत "कौंतेय कथा" , नरेन्द्र शर्मा

कृत "उत्तर-जय" ,डा. कृष्णनंदन पीयूष कृत "योगनिद्रा" , विनोदचन्द्र पाण्डेय कृत "चक्रव्यूह" , त्रिवेदी रामानंद शास्त्री कृत "जय-विजय" , श्रीराम सिंह कृत "एकलव्य" , नरेन्द्र शर्मा कृत "सुवर्णा" , डा. स्वर्ण किरण कृत "भीष्म" , गणपति शंकर कृत "मंथन" , नरेश मेहता कृत "महाप्रस्थान" , जगदीश चतुर्वेदी कृत " सूर्यपुत्र" , चाँदमल अग्रवाल कृत "चित्रांगदा" , लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत "वीरगति" , डा. किशोर काबरा कृत "परिताप के पाँच क्षण" , सत्येन्द्र मिश्र कृत " अहोरात्र" , केदारनाथ मिश्र "प्रभात" कृत "प्रणवीर" , डा. किशोर काबरा" कृत "नरो वा कुंजरो वा " , रामसहायलाल श्रीवास्तव कृत " देवव्रत (भीष्म) " , दिनेशचन्द्र द्विवेदी कृत " कालजयी" , मैथिलीशरण गुप्त कृत "जयद्रथ-वध" आदि-आदि ।

प्रबंध-काव्यों और खण्ड-काव्यों के अतिरिक्त महाभारत की कथावस्तु को लेकर कुछ गीतिनाट्यों की रचना भी हुई है , जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं — भगवतीचरण वर्मा कृत "त्रिपथगा " (इसमें वर्माजी के "कर्ण" , "महाकाल" और "द्रौपदी" ये तीन गीतिनाट्य संकलित हुए हैं ।) , डा. धर्मवीर भारती कृत " अन्धायुग" , उदय-शंकर भट्ट कृत "गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण " और "अश्वत्थामा" , जानकीवल्लभ शास्त्री कृत " पांचाली" आदि-आदि । [28]

महाभारत की कथावस्तु पर आधारित हिन्दी उपन्यास :

हमारे शोध-प्रबंध का सीधा सम्बन्ध डा. नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों से है , अतः डा. कोहली के अतिरिक्त महाभारत की कथावस्तु पर आधारित अन्य उपन्यासकारों के उपन्यासों का उल्लेख करना असमीचीन न होगा । जैसा कि पूर्ववर्ती पृष्ठों में निरूपित किया गया है हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार अमृतलाल नागर ने महाभारत की कथाओं को बहुत ही सरस-सरल ढंग से प्रस्तुत किया है । किन्तु पुस्तक-परिचय में " कल्चर" लिखा गया है । उसमें चित्र भी दिए गए हैं । अतः हम उसे बाल-उपन्यास कह सकते हैं । डा.

नरेन्द्र कोहली के पश्चात् पौराणिक उपन्यासकारों में डा. भगवतीशरण मिश्र का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है । कृष्ण के जीवन पर उनके दो उपन्यास मिलते हैं — "प्रथम पुरुष" और " पुरुषोत्तम " । कृष्ण महाभारत के एक प्रमुख पात्र या नायक हैं । डा. अनसूया पटेल ने इस संदर्भ में लिखा है —" "पुरुषोत्तम" उपन्यास भी कृष्ण जीवन पर आधारित है । वस्तुतः इसे हम "प्रथम पुरुष" आ उत्तरार्द्ध कह सकते हैं । जहां "प्रथम पुरुष" की कथा भागवत पर आधारित है , वहां पुरुषोत्तम की कथा पर महाभारत का अधिक प्रभाव है ।"[29] डा. मिश्र के पश्चात् इस क्षेत्र में कन्हैयालाल ओझा आते हैं । उनके द्वारा प्रणीत उपन्यास " सम्भवामि " पौराणिक भी है , ऐतिहासिक भी और सामाजिक-राजनीतिक भी है ; क्योंकि इसमें उन्होंने वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक की समाज-व्यवस्थाओं का आकलन किया है । उपन्यास दो खण्डों में है । उसके प्रथम खण्ड में महाभारत के कई सन्दर्भ आते हैं ।[30] मनु शर्मा भी एक ऐतिहासिक -पौराणिक उपन्यासकार के रूप में जाने जाते हैं । डा. त्रिभुवनसिंह ने उनके संदर्भ में अपनी महत्वपूर्ण टिप्पणी देते हुए लिखा है —" "मनु शर्मा" की पहचान एक श्रेष्ठ उपन्यासकार के रूप में उनके पौराणिक उपन्यासों के कारण बनी है ।" (31) महाभारत की कथावस्तु पर उनके चार उपन्यास मिलते हैं — द्रौपदी की आत्मकथा , द्रोण की आत्मकथा , कर्ण की आत्मकथा और कृष्ण की आत्मकथा । "कृष्ण की आत्मकथा" में महाभारत के अतिरिक्त श्रीमद्-भागवत और हरिवंशपुराण का आधार भी लेखक ने लिया है ।[32]

डा. नरेन्द्र कोहली के महाभारत की कथावस्तु पर आधारित उपन्यास :

पौराणिक उपन्यासों का प्रारंभ डा. नरेन्द्र कोहली ने "दीक्षा" उपन्यास से किया । "दीक्षा" की सफलता से प्रेरित होकर इन्होंने रामायण की कथावस्तु पर आधारित अन्य तीन उपन्यास — "अवसर" , "संघर्ष की ओर " और "युद्ध" लिख डाले । इस उपन्यास-माला ने डा. कोहली को "यश" और "अर्थ" दोनों दिए । फलतः

थोड़ा दम लेकर वे पुनः जुट गये । इस बार उन्होंने अपना लक्ष्य महा-भारत का रखा । महर्षि वेदव्यास द्वारा प्रणीत महाभारत काव्य का उन्होंने खूब अवगाहन किया । उस महासागर में उन्होंने खूब डूबकियां लगायीं । और उसका परिणाम है यह उपन्यासमाला । महाभारत पर उन्होंने आठ उपन्यास दिए , जो क्रमशः इस प्रकार हैं —
1. "बंधन" (महासमर भाग-1) , 2. "अधिकार" (महासमर भाग-2) , 3. "कर्म" (महासमर भाग-3) ,4."धर्म" (महासमर भाग-4) ,5." अंतराल " (महासमर भाग-5) ,6." प्रच्छन्न" (महासमर भाग-6) ,7."प्रत्यक्ष" (महासमर भाग-7) और 8. "निर्बन्ध" (महासमर भाग-8) । प्रस्तुत अध्याय में उक्त आठों उपन्यासों पर क्रमशः विचार करने का उपक्रम है । इन आठों भागों की कुल पृष्ठ संख्या 3632 हैं ।

(1) बंधन / महासमर भाग-1 / :

"बंधन" महाभारत की कथावस्तु पर आधारित प्रथम उपन्यास है । यह 70 अध्यायों और 472 पृष्ठों का एक बृहत् काय उपन्यास है । यह अनेक बार कहा गया है कि "महाभारत" केवल युद्धकथा मात्र नहीं है , यद्यपि उसका लाक्षणिक अर्थ आज भी युद्ध या लड़ाई से ही लिया जाता है । किसी परिवार के बीच में कहीं-कोई लड़ाई-झगड़ा या टण्टा-फिसाद होता है तो आज भी यह कहा जाता है कि उनके बीच तो "महाभारत" चल रहा है । हां , तो वह युद्धकथा मात्र नहीं है । भारत के इतिहास और संस्कृति का एक मानक चित्र या दस्तावेज है महाभारत । "रामा-यण" में आदर्श था , यहां यथार्थ है । वस्तुतः यह व्यक्ति तथा समाज के विकास की यात्रा-गाथा भी है । युद्ध उसके मध्य में है । युद्ध से पूर्व वे कारण और परिस्थितियां हैं जो युद्ध तक ले जाती हैं , जिनके कारण युद्ध अनिवार्य हो जाता है । युद्ध के पश्चात् वे परि-स्थितियां तथा मनोविज्ञान हैं जिससे मनुष्य युद्ध की मनःस्थिति से

ऊपर उठकर शाश्वत सुख व शांति प्राप्त करने की यात्रा आरंभ करता है । "महाभारत की कथा के विभिन्न खण्डों में विभिन्न चरित्र घटनाओं के अनुसार महत्त्वपूर्ण होकर उस खण्ड-विशेष के नायक प्रतीत होने लगते हैं, किन्तु सम्पूर्ण कथा का नायक धर्मराज युधिष्ठिर हैं ।"रामायण" कथा के नायक राम हैं, जबकि यहां कृष्ण होते हुए भी नायक कृष्ण नहीं हैं । यही इस कथा की विचित्रता है । युधिष्ठिर के भविष्य का बीजारोपण तब हो जाता है, जब भीष्म अपने पिता शान्तनु के दूसरे विवाह के लिए मार्ग प्रशस्त करने हेतु दो प्रतिज्ञाएं लेते हैं -- एक. हस्तिनापुर के युवराज या अधिकारी वे कभी नहीं होंगे और दो. वे आजीवन अविवाहित रहेंगे ।

प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में लेखक का मंतव्य है --" "बंधन" शान्तनु, सत्यवती तथा भीष्म के मनोविज्ञान तथा जीवन-मूल्यों की कथा है । घटनाओं की दृष्टि से यह सत्यवती के हस्तिनापुर में आने तथा हस्तिनापुर से चले जाने के मध्य की अवधि की कथा है; जिसमें जीवन के उच्च आध्यात्मिक मूल्य जीवन की निम्नता और भौतिकता के सम्मुख असमर्थ होते प्रतीत होते हैं, और हस्तिनापुर का जीवन महाभारत के युद्ध की दिशा ग्रहण करने लगता है । उस भावी विनाश से मानवता को बचाने के लिए कृष्ण द्वैपायन व्यास अपनी माता सत्यवती को हस्तिनापुर से निकाल अपने साथ ले जाते हैं, किन्तु तब तक हस्तिनापुर शान्तनु, सत्यवती तथा भीष्म के कर्म-बंधनों में बंध चुका है और भीष्म भी उससे मुक्त होने की स्थिति में नहीं रहे हैं ।"[33]

वस्तुतः उपन्यास के इस खण्ड के नायक तो भीष्म ही लगते हैं । उपन्यास का शीर्षक "बंधन" अत्यन्त ही सार्थक और सटीक है । उपन्यास में अनेक स्थानों पर एतद्विषयक संदर्भ हमें प्राप्त होते हैं ।[34] उपन्यास के अन्त भाग में सत्यवती व्यास के साथ जाने से पहले भीष्म से कहती है -- "कुरुकुल की रक्षा करना ", तब भीष्म का मन जैसे

चीत्कार कर उठता है —" जब मैं इसी प्रकार मुक्ति के पथ पर बढ़ा था , तो मुझे क्यों रोक लिया था मां । और आज भी मेरे पग वन की ओर उठना चाहते हैं और मेरे पगों को तुम निगड़बद्ध कर रही हो ।" 35

उपन्यास का प्रारंभ महाराजकुमार देवव्रत के उल्लेख से होता है । देवव्रत हस्तिनापुर के कुरु सम्राट शान्तनु और गंगा का पुत्र है । जन्म के बाद माता गंगा देवव्रत को छोड़कर चली गयीं थीं । देवव्रत का शैशव विभिन्न ऋषियों के आश्रम में विभिन्न विषयों , शास्त्रों तथा शस्त्रास्त्रों के अध्ययन व अभ्यास में गुजर गया था । अब वह अपने पिता शान्तनु के साथ रहता है । शान्तनु जब-तब मृगया और गंगा-विहार के लिए निकल पड़ते थे और प्रसन्नचित्त लौटते थे , किन्तु एक दिन जब वह लौटते हैं तो काफी चिंतित व उद्विग्न दिखते थे । किसीके अभिवादन का उत्तर दिए बिना सीधे वे अपने कक्ष में चले जाते हैं । राजकुमार देवव्रत इससे चिंतित होकर पिता की उद्विग्नता का कारण ढूंढने में लग जाते हैं । उन्हें मालूम होता है कि पिता निषादराज की पुत्री सत्यवती पर मुग्ध हैं और जिन शर्तों पर निषादराज अपनी सुंदरी पुत्री का विवाह सम्राट से करना चाहते हैं , उनसे महाराज का चित्त विचलित है । वैसे तो शान्तनु सम्राट है और निषादराज को विवश भी कर सकते हैं । किन्तु शान्तनु का न्याय और विवेक उसके लिए तैयार नहीं है । फलतः देवव्रत निषादराज के पास पहुंचते हैं और पिता का विवाह-प्रस्ताव निषादराज के सम्मुख रखते हैं । निषादराज देवव्रत के सामने विवाह की शर्त रखते हैं कि सम्राट और सत्यवती की जो संतान होगी वही युवराज कहलायेगी और सम्राट का राज्याधिकारी भी वही होगी । देवव्रत निषादराज को वचन देते हैं तब उनका संशयी मन पुनः शंका प्रकट ~~प्रकट~~ करता है कि देवव्रत तो अपना वचन निभायेंगे , लेकिन भविष्य में उनकी संतानें राज्य पर अपना अधिकार नहीं जतायेंगी उसका क्या भरोसा ? तब देवव्रत एक भीषण प्रतिज्ञा करते हैं कि वे आजीवन अविवाहित रहेंगे । इस प्रतिज्ञा के बाद लोग उनको भीष्म

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

के नाम से जानते हैं ।*

शान्तनु इस संदर्भ में अपने पुत्र देवव्रत से कहते हैं -- "तुमने जो प्रतिज्ञा की है गांगेय । वह कठिन ही नहीं, असम्भव प्रतिज्ञा है । तुमने भीषण कर्म किया है । मैं तुम्हें क्या दे सकता हूं पुत्र । तुम जैसे पुरुष को कोई दे भी क्या सकता है । मुझे लगता है कि तुम्हारा जन्म किसीसे कुछ लेने के लिए हुआ ही नहीं है । तुम आजीवन दोगे । लोग याचक होंगे, तुम दाता होगे । जीवन तुमको कभी कुछ नहीं देगा, तुमसे पायेगा ही पायेगा । मैंने तुम्हें कभी नहीं पहचाना था पुत्र । आज तुम्हारे व्यक्तित्व का एक स्फुल्लिंग देखा है । मैं इस पहचान के अवसर पर फिर से तुम्हारा नामकरण कर रहा हूं -- तुम अपनी इस प्रतिज्ञा के कारण आज से भीष्म कहलाओगे ।" 36

यहां पर पूर्वदीप्ति (फ्लेश-बेक) शैली का प्रयोग करते हुए लेखक ने सत्यवती-पराशर की कथा और उनके प्रेम से उत्पन्न कृष्ण द्वैपायन की कथा को भी सत्यवती के आत्म-चिंतन के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।

भीष्म का त्याग अद्वितीय-अपूर्व है । लेकिन त्याग भी एक कर्म है और वह भी व्यक्ति को बंधनों में डालता है । भीष्म के इस त्याग से ही आगे की घटनाएं, अनेक अनुचित और अन्यायपूर्ण कार्य संचरित होते हैं । सत्यवती को शान्तनु से दो पुत्र होते हैं : चित्रांगद और विचित्रवीर्य — एक भयंकर अहंकारी और उत्पाती और दूसरा भयंकर कामी । अपने उन्हीं दुर्गुणों के रहते चित्रांगद मारा जाता है और असमय ही काम के अति-सेवन से दुर्बल होकर एक दिन विचित्रवीर्य भी दम तोड़ देता है । उसके पूर्व माता सत्यवती की हठ के कारण भीष्म को एक अनुचित कार्य करना पड़ता है । काशीराज ने अपनी पुत्रियों का स्वयंवर रखा था । सत्यवती के आग्रह पर भीष्म इन तीनों का अपहरण करते हैं । भीष्म के रथ पर आरूढ़ होकर अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका हस्तिनापुर के प्रासाद में जब पैर रखती हैं तब उनको ज्ञात होता है कि उनका विवाह भीष्म से नहीं, अपितु विचित्रवीर्य

से होनेवाला है । अम्बिका और अम्बालिका तो चुप रहती है , पर अम्बा विद्रोह करती है । कहती है कि यदि भीष्म ने अपहरण न किया होता तो वह सौभ नरेश शाल्व का वरण करती , क्योंकि स्वयंवर-पूर्व ही वह उसे अपना पति मान चुकी थी ।[37] अतः वह उसे शाल्व के पास भेज देते हैं पर शाल्व उसे स्वीकार नहीं करता क्योंकि भीष्म द्वारा उसका अपहरण हो चुका था और एक अपहृता नारी को स्वीकार कर वह अपनी शान में बट्टा नहीं लगाना चाहता था । अम्बा अपमानित होकर अपने नाना को लेकर भीष्म के गुरु परशुराम को मिलती है । इस बात को लेकर परशुराम भीष्म के साथ युद्ध तक करने को तैयार हो जाते हैं , पर जब उनको भीष्म द्वारा ज्ञात होता है कि वह पहले शाल्व को चाहती रही है , बाद में भीष्म को देखकर वह उन्हें चाहने लगी और अपनी मरजी से वह रथारूढ़ हुई थी । भीष्म और माता सत्यवती विचित्रवीर्य के लिए उसे माँग ही रहे थे , किन्तु उसने अपनी इच्छा से सम्राट विचित्रवीर्य के प्रस्ताव को ठुकराया है , अतः उसे अनाथ और असहाय नहीं कहा जा सकता । तब परशुराम भीष्म के तर्कों से संतुष्ठ होकर अम्बा के नाना होत्रवाहन को कहते हैं —" यह तो धर्म-याचना नहीं , काम-याचना है । परशुराम ने असहाय जन को न्याय दिलाने की प्रतिज्ञा की थी , कामनाओं के बवण्डर में भटकते लोगों की इच्छाओं की पूर्ति के लिए मैं शस्त्र नहीं उठा सकता । ... मै अब तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर पाऊँगा , होत्रवाहन । तुम राजकुमारी को अपने साथ ले जाओ ... परशुराम आज एक महा-अपराध से बच गया है ।"[38] अम्बा भीष्म से कहती है कि वह अपना जीवन तपस्या में दग्ध करते हुए इस कामना के साथ मरेगी कि अगले जन्म में वह उसके शरीर को नष्ट कर दे ।

उसके बाद राजवैद्यों के कहने के बावजूद काम के अति-सेवन से सम्राट विचित्रवीर्य की मृत्यु हो जाती है । हस्तिनापुर के भावी सम्राट के लिए माता सत्यवती अम्बिका और अम्बालिका के लिए नियोग-विधि का सहारा लेती है । माता सत्यवती अपने कानीन पुत्र कृष्ण द्वैपायन व्यास को "नियुक्त पुरुष" के रूप में आमंत्रित करती है । नियोग के

समय अम्बिका द्वारा आँखें बन्द कर लेने के कारण तथा गर्भ-धारण के दौरान उचित आहार व औषधियां न लेने के कारण अम्बिका जब हृष्ट-पुष्ट किन्तु अन्ध शिशु को जन्म देती है, तब माता सत्यवती अम्बालिका के लिए पुनः व्यासजी को बुलवाते हैं। भय से पीली पड़ जाने के कारण वह पाण्डु रोगी शिशु को जन्म देती है। तब तीसरी बार पुनः व्यासजी को नियोग हेतु बुलवाया जाता है। अम्बिका स्वयं न जाकर अपनी दासी मर्यादा को भेजती है। वह भक्ति-भाव पूर्वक पुत्र की कामना से नियुक्त-पुरुष व्यासजी से नियोग करती है। इस प्रकार इस नियोग-विधि से माता सत्यवती तीन पौत्र प्राप्त करती हैं -- धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर, जो क्रमशः अम्बिका, अम्बालिका और मयादा के पुत्र हैं।

तीनों पुत्रों का बड़ा होना, धृतxxxxxx धृतराष्ट्र का स्वार्थी कामांध व्यवहार, पांडु का शस्त्रास्त्रों में निपुण होना, विदुर का न्यायी, शांत और धर्मज्ञ होना, युवराज की समस्या, अंध होने के कारण पांडु का युवराज होना, पुनः इन पुत्रों के लिए वधुओं की खोज के लिए माता सत्यवती काxxxxxx का भीष्म को आदेश, धृxxxxxxxxxx धृतराष्ट्र के लिए गांधार-नरेश गxxxxxx की कन्या गांधारी, xxxx भोजपुर-नरेश कुंतिभोज द्वारा स्वयंवर की योजना, पांडु का उसमें जाना, कुंतिभोज की पोषिता-पुत्री कुन्ति द्वारा पाण्डु का वरण, प्रथम-रात्रि में ही पाण्डु को अपनी असमर्थता का ज्ञान होना, दिग्विजय के लिए निकल पड़ना, उसे अन्यथा समझकर भीष्म द्वारा मद्र-नरेश की कन्या माद्री को शुल्क चुकाकर पाण्डु के लिए लाना, गांधारी के साथ उसके भाई शकुनि का आना, गांधारी के मन की फांस, धृतराष्ट्र को अपने वश में कर लेना, पाण्डु द्वारा माद्री से दूर रहने के लिए दिग्विजयों और मृगया का बहाना, समदुखिया होने के कारण कुन्ति और माद्री में बहनापा, मृगया में पाण्डु के साथ जाने की हठ, अन्ततः पाण्डु द्वारा अपनी असमर्थता को स्वीकार करना, तपस्या और स्वास्थ्य-लाभ के लिए उत्तर में शतश्रृंग की ओर जाना, वहाँ के आश्रम में रहना, आश्रम के कुलपति से पाण्डु की

चर्चा , समस्या के समाधान के रूप में नियोग-विधि की योजना , ऋषि दुर्वासा द्वारा कुन्ति को मिले देव-मंत्रों की आराधना तथा अज्ञात नियुक्त पुरुष से कुन्ति को क्रमशः तीन पुत्रों की प्राप्ति — युधिष्ठिर , भीम और अर्जुन जो क्रमशः धर्मराज , वायु-देवता और इन्द्र के मंत्रों से प्रदत्त माना जाना , माद्री का भी नियोग के लिए तैयार होना , अश्विनीकुमार और नियुक्त-पुरुष के योग से माद्री द्वारा नकुल और सहदेव को जन्म देना , उधर बहुत चाहने पर भी गांधारी युधिष्ठिर से पूर्व युवराज देने में सफल नहीं होती है , युधिष्ठिर के जन्म की सूचना से व्यथित होकर कोख पर मुष्टि-प्रहार से रक्तस्राव , किन्तु समयसर की चिकित्सा से गर्भ का बच जाना , गांधारी द्वारा सुयोधन , सुशासन आदि का जन्म , पाण्डु का यह सोचना कि वह औषधों के कारण स्त्री-सहवास कर सकेगा , माद्री और पाण्डु का सहवास करना , पाण्डु की मृत्यु , कुंती का सती होने के लिए तत्पर होना , पर माद्री किसी प्रकार कुंती को मना लेती है , माद्री का सती होना , शतश्रृंग आश्रम के कुलपति तथा अन्य आश्रमवासियों के साथ अपने पांच पुत्रों को लेकर कुंती का हस्तिनापुर आना , पाण्डु की मृत्यु की सूचना से राज-परिवार में शोक , भीष्म - सत्यवती-विदुर आदि का विलाप , अस्थि-विसर्जन के उपरान्त बारह दिनों के शोक के बाद सबका नगर-प्रवेश , कृष्ण द्वैपायन का आना , उनके सम्मुख सत्यवती का विलाप , व्यासजी द्वारा माता को अपने साथ जाने के लिए राजी कर लेना , अम्बिका और अम्बालिका का भी उनके साथ जाना , भीष्म के कंधों पर उत्तरदायित्वों के बोझ का और बढ़ जाना ; बंधन-मुक्ति के प्रयत्नों में और बंधनों में जकड़ते जाना जैसी अनेकों घटनाओं को यहां उपन्यस्त किया गया है । कुंती के चिंतन में जब-तब उस व्यथा को भी लेखक ने पूर्वदीप्ति पद्धति से उकेरा है जिसमें विवाह पूर्व उसने एक कानीन पुत्र को जन्म दिया था । कानीन पुत्र को कुछ ऋषि मान्यता देते थे , किन्तु राज-परिवारों में कुनीन पुत्र की मान्यता समाप्त हो चुकी थी । अतः कुन्तिभोज कुंती के कानीन पुत्र को एक अधिरथ के

हवाले कर देते हैं । कुंती को कहीं इतना ज्ञात है कि वह अधिरथ हस्तिनापुर में कहीं है । [39]

इस प्रकार "बंधन" की कथा सत्यवती के हस्तिनापुर प्रवेश से लेकर उसके हस्तिनापुर के त्याग के बीच की कहानी है । किन्तु सत्यवती की एक अनुचित मांग के कारण कुरुकुल के नाश के बीज का बपन तो हो ही जाता है । एक गलत काम अनेक गलत कामों को न्यौता देता है । भीष्म यदि हस्तिनापुर के युवराज होते तो न उनको अम्बा , अम्बिका और अम्बालिका का हरण करना पड़ता , न अन्धे धृतराष्ट्र का जन्म होता , न गांधारी आती । जिस प्रकार रघुकुल में कैकेयी के आने से एक विष-वृक्ष का जन्म होता है , ठीक उसी तरह कुरुकुल में सत्यवती और गांधारी के आने के कारण एक विष-वृक्ष का बपन हो जाता है । यहां मुझे हमारे पूर्व अध्यक्ष डा. पारुकान्त का एक दोहा याद आ रहा है --

" गलत गलत से मिल गये , गलत गलत सब होय ।
गलत गलत सच को कहें , गलत गलत सच होय ।।" [40]

§2§ अधिकार / महासमर भाग-2 / :
================================

जब कोई भी व्यक्ति , समाज या राष्ट्र गलत प्रकार के बंधनों में पड़ जाता है , तब सत्ता और अधिकार की लड़ाई शुरू होती है । "बंधन" में कई प्रकार के बंधन , कई लोगों के साथ है । शान्तनु और गंगा का बंधन , सत्यवती के कारण शान्तनु का बंधना , उसके कारण भीष्म का बंधना , गांधारी , कुन्ती , माद्री आदि का बंधना । उसके भी पहले अम्बिका और अम्बालिका का बंधना । जहां इतने सारे बंधन हो वहां गलत तरीके से अधिकार-प्राप्ति का युद्ध तो शुरू होना ही है । भीष्म हैं कि मुक्ति के लिए निरंतर छटपटाते रहते है , पर प्रत्येक बार कठोर बंधनों में निगड़बद्ध होते ही जाते हैं । "बंधन" उपन्यास जहां से समाप्त होता है , "अधिकार" वहां से

शुरू होता है । यह 21 अध्याय और 383 पृष्ठों का उपन्यास है ।

प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में प्रकाशकीय टिप्पणी में कहा गया है —" अधिकार की कहानी हस्तिनापुर में पांडवों के शैशव से आरंभ होकर , वारणावत के अग्निकांड पर जाकर समाप्त होती है । वस्तुतः यह खण्ड "अधिकारों" की व्याख्या , अधिकारों के लिए हस्तिनापुर में निरंतर होने वाले षडयंत्र , अधिकार को प्राप्त करने की तैयारी तथा संघर्ष की कहानी है । राजनीति में अधिकार प्राप्त करने के लिए होनेवाली हिंसा तथा राजनीतिक त्रास के भीषण बोझ में दबे हुए असहाय लोगों की पीड़ा की कथा समानांतर चलती है । सतोगुणी राजनीति तथा तमोन्मुखी रजोगुणी राजनीति का अन्तर इसमें स्पष्ट होता है । एक ओर निर्लज्ज स्वार्थ और भोग तथा दूसरी ओर अनासक्त धर्म-संस्थापना का प्रयत्न । दोनों पक्ष आमने-सामने हैं । महाभारत की कथा में कृष्ण का प्रवेश भी इसी खण्ड में हो गया है ।" 41

अधिकार के प्रथम अध्याय में युधिष्ठिर , भीम , अर्जुन , दुर्योधन आदि की प्रकृति , शकुनि की भेद-नीति , कुन्ती-पुत्रों को पांडव और धृतराष्ट्र-पुत्रों को कौरव कहने की शुरूआत जबकि पांडव भी कौरव ही थे , उनमें भी फूट डालने के लिए कौन्तेय और माद्रेय के रूप में उनको सम्बोधित करना , अर्जुन की रूचि धनुर्विद्या की ओर , भीम की वृत्ति अधिकाधिक शारीरिक सौष्ठव व शक्ति बढ़ाने की ओर और युधिष्ठिर की रूचि सत्य की खोज में देखी जा सकती है । वस्तुतः युधिस्ठिर , भीष्म और विदुर की प्रकृति एक-सी दृष्टिगोचर होती है । विदुर और पारंसवी का प्रसन्न दाम्पत्य-जीवन भी यहां देख सकते हैं ।

कुन्ती को एक खण्डहरनुमा प्रासाद रहने को दिया जाता है । धृतराष्ट्र की स्वार्थान्धता के कारण भीष्म बहुत उद्विग्न रहने

लगते हैं , फलतः भीष्म धृतराष्ट्र , कुन्ती और कृपाचार्य आदि से बातचीत करते हैं । सुयोधन शकुनि की ओर से भीम को मरवाने का प्रयत्न किया जाता है । इस घटना से कुन्ती चिंतित हो उठती है । राजकुमारों की प्राथमिक व पारंपरिक शिक्षा के लिए कृपाचार्य को नियुक्त किया जाता है । कृपाचार्य राजकुमारों के खेल का एक आयोजन करते हैं । उसमें भीष्म विशेष रूप से उपस्थित रहते हैं । यहाँ धृतराष्ट्र-गांधारी के पुत्र सुयोधन की दुर्वृत्तियों को लक्षित करते हुए भीष्म प्रथम बार सुयोधन के के लिए दुर्योधन शब्द का प्रयोग करते हैं । भीष्म सुयोधन को समझाने के बहुतेरे प्रयत्न करते हैं , किन्तु उसका कोई असर उस पर पड़ता नहीं है । वह तो उल्टे प्रमाणकोटि उदक्-क्रीडन की योजना बनाता है , जिसमें परिवार का कोई भी वृद्धजन उपस्थित नहीं होगा और तब भीम को छल-कपट द्वारा खत्म किया जा सकता है ।[42] ये सब द्वितीय अध्याय में उपन्यस्त हुआ है ।

प्रमाणकोटि में दुर्योधन अपने कपटपूर्ण व्यवहार से भीम को जहरीले लड्डू खिला देता है और भीम जब पूर्णतया निद्राधीन हो जाता है तब अपने लोगों द्वारा उसको बंधवाकर पानी में फिंकवा दिया जाता है । भीम के न मिलने पर युधिष्ठिर को चिन्ता होती है । वे भीम को खोजने का प्रयत्न करते हैं , किन्तु अन्ततः निराश होकर हस्तिनापुर लौट आते हैं । दुर्योधन का व्यवहार मद्यप जैसा होता है । कुन्ती विदुर को बुलवाती है । दोनों के बीच वार्तालाप होता है । चारों भाई रातभर सो नहीं सकते हैं । दुर्योधन के इस षडयंत्र के बारे में चिरंतन नामक सारथि को कुछ पता था । किन्तु उसकी भी हत्या करवा दी जाती है । युयुत्सु उसके शव की पहचान करते हैं । वह सूतों की बस्ती में जाता है । वापस आकर माता कुन्ती से बात करता है । भीम को विष दिए जाने की बात प्रकट हो जाती है । युयुत्सु धृतराष्ट्र का पुत्र तो था , लेकिन वह गांधारी से नहीं , एक दासी से था । महाभारत में हम देखते हैं कि वह हमेशा पांडवों के पक्ष में खड़ा रहता है । कुन्ती को अपने अन्य

पुत्रों की चिन्ता होने लगती है । अतः वह रात में भीम को खोजने जाने की बात का विरोध करती है । तीसरे अध्याय में इन्हीं सब घटनाओं को निरूपित किया गया है । [43] इसी अध्याय में यह भी निर्दिष्ट हुआ है कि नकुल अश्वविद्या तथा सहदेव खडगविद्या तथा ज्योतिष विद्या में महारत हासिल कर रहे हैं ।

चतुर्थ अध्याय में भीष्म दुर्योधन , दुःशासन , विकर्ण आदि से भीष्म बात करते हैं । उन्हें विकर्ण द्वारा यह ज्ञात होता है कि उनका रसोइया चक्रवाल भी लौटा नहीं है । इस बात पर सुशासन उसको डांट देता है । तभी पहली बार भीष्म उसके लिए "दुःशासन" शब्द का प्रयोग करते हैं । [44] इसके अतिरिक्त इस अध्याय में भीष्म का धृतराष्ट्र को मिलना , दुर्योधन पर आरोप लगाना , धृतराष्ट्र द्वारा प्रमाण की मांग करना , इस बात से भीष्म को बहुत बुरा लगना, युधिष्ठिर को युवराज बनाने का विचार , राजकुमारों के लिए किसी अच्छे गुरु की तलाश , भीम का नाग लोक में पहुंच जाना , आर्यक नाग से मुलाकात , भीम को उनके द्वारा ज्ञात होना कि वह उनके दौहित्र का दौहित्र है , आर्यक द्वारा कालकूट-विष का शमन , उनके द्वारा भीम का उपचार , भीम को संजीवनी रस देना , भीम का वापस आना , माता के आदेश पर भीम का मौन रह जाना , भीष्म के मन का उहापोह , भीष्म का पांडवों के प्रति अधिक स्नेहसिक्त हो जाना जैसी घटनाओं का निरूपण किया गया है । [45]

द्रोण का कृपाचार्य के पास आना , कृपा-कृपी संवाद , द्रोण की दरिद्र अवस्था , द्रुपद द्वारा अपमानित किया जाना , शत्रु का शत्रु मित्र न्याय से द्रोण का हस्तिनापुर आना , गुरु द्रोण का कुंए से बीटा निकालना , भीष्म द्वारा द्रोण को बुलाया जाना , द्रोण-भीष्म संवाद , द्रोण द्वारा युद्धशाला का प्रस्ताव , द्रोण-कर्ण संवाद , कर्ण के मन की कसक , अर्जुन के प्रति द्वेष भावना , द्रोण का अर्जुन के प्रति आसक्ति-भाव , लक्ष्यवेध-प्रसंग , कर्ण-दुर्योधन का मिलना , दुर्योधन की युक्ति , वास्तविक लक्ष्यवेध के रूप में गुरु-पुत्र अश्वत्थामा

को मित्र बनाने की योजना , कर्ण के मन का उहापोह , गुरू की खोज, अर्जुन की ज्ञान-तत्परता , अश्वत्थामा के मंत्र को लेकर अर्जुन के मन में द्वन्द्व , अर्जुन की ज्ञान-निष्ठा से द्रोण का प्रभावित होना , एकलव्य-प्रसंग , द्रोण द्वारा एकलव्य के दाहिने अंगूठे को गुरु-दक्षिणा के रूप में मांग लेना , कर्ण का परशुराम से मिलना , कर्ण की गुरु-निष्ठा के कारण परशुराम के सम्मुख उसका जातिगत रहस्य प्रकट हो जाना, परशुराम का क्रोध और कर्ण को अपमानित करके निकाल देना , ब्रह्मास्त्र का ज्ञान न मिल पाना , गुरु द्रोण द्वारा अपने शिष्यों के ज्ञान का प्रदर्शन , धनुर्विद्या में अर्जुन की दक्षता से सभी प्रभावित , कर्ण का रंगशाला में प्रवेश , अर्जुन को ललकारना , द्रोण की अनुमति , कृपा"-चार्य द्वारा विरोध , दुर्योधन द्वारा कर्ण को अंग-नरेश के रूप में घोषित करना , विदुर की आपत्ति , अंगदेश के स्वामीत्व पर विवाद , कर्ण द्वारा दुर्योधन की कृतज्ञता ज्ञापित करना , कुंती को मालूम होना कि कर्ण उसका ही पुत्र है , कुन्ती का अन्तर्द्वन्द्व , गुरु-दक्षिणा के रूप में पांचाल-नरेश द्रुपद को बंदी बनाकर लाने का गुरु द्रोण का आदेश , दुर्योधन के नेतृत्व में कौरवों को असफलता , उल्टे पांव लौट आना , युधिष्ठिर के नेतृत्व में अर्जुन द्वारा द्रुपद को बंदी बनाकर लाया जाना , अपमानजनक संधि , द्रुपद का आधा राज्य छीन लेना ,द्रुपद द्वारा प्रतिशोध हेतु यज्ञ करवाना , धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी को प्रतिशोध हेतु तैयार करना , अक्रूर का आकर पृथा तथा पाण्डवों से मिलना , अक्रूर द्वारा कृष्ण के यशोगान से सभी का प्रभा-वित होना , अक्रूर का विदुर तथा भीष्म आदि से मिलना , यादव-प्रतिनिधि के रूप में धृतराष्ट्र की सभा में उपस्थित होना , अपनी वाक्पटुता से धृतराष्ट्र को लपेटे में लेना , युधिष्ठिर के युवराज्या-भिषेक की तिथि को निर्धारित करवा लेना , गांधारी का प्रकोप , धृतराष्ट्र द्वारा अपनी कपट-नीति की बात गांधारी को करना , गांधारी द्वारा दुर्योधन को समझा लेना , कृष्ण-बलराम का युव-राज्याभिषेक के समय आना , कृष्ण की धर्म-संस्थापना वाली नीति

से भीष्म -विदुर आदि सभी का अतीव प्रसन्न होना , गुप्तचर की सूचना के कारण कृष्ण-बलराम का अभिषेक के उपरान्त तुरन्त मथुरा के लिए प्रस्थान , युधिष्ठिर की शपथ-विधि और उसका उद्बोधन , उद्बोधन में आनृशंसता के सिद्धान्त की मुख्यतः चर्चा , भीष्म के आशीर्वाद , भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को अधिकार और अधिग्रहण का अंतर समझाना , भीष्म में एक प्रकार से पूर्णकाम होने का संतोष और साथ ही भविष्य को लेकर चिंतित होना जैसी घटनाएं पंचम अध्याय से लेकर इक्कीसवें अध्याय तक में उपन्यस्त हुई है । (46)

उपन्यास के इस खण्ड से ही भविष्य में होने वाली कुछ भयावह घटनाओं के संकेत मिलने लगते हैं । दुर्योधन , दुःशासन , कर्ण , शकुनि , कणिक , धृतराष्ट्र , अश्वत्थामा की एक धुरी बनने लगती है । दूसरी ओर पांडवों के साथ भीष्म , विदुर , कृष्ण-बलराम आदि हैं , किन्तु भीष्म इस कुटुम्ब-कलह में स्वयं को क्रमशः असमर्थ पाते हैं । धृतराष्ट्र की धूर्त नीति से सभी धर्म-प्राण , न्याय-नीति-विवेक संपन्न लोग दुखी है पर कुछ करने में असमर्थ हैं । दूसरी ओर दुर्वृत्तियां संगठित होती हुई दृष्टिगोचर हो रही है । उपन्यास में स्थान-स्थान पर हमें विदुर की धर्मनीति का भी परिचय प्राप्त होता रहता है । ये बातें ऐसी हैं जो आज के संदर्भ में भी उतनी ही प्रासंगिक हैं -- " मैं तो मात्र कह रहा था कि यदि अधर्म संगठित हो रहा है, तो धर्म को भी संगठित होना चाहिए । ... सामान्यतः होता यही है कि अन्याय और स्वार्थ तो संगठित होकर , न्याय तथा सर्वहित पर प्रहार करते हैं ; किन्तु न्याय और सर्वहित न तो संगठित होते हैं , न प्रहार करते हैं , न प्रहार करने वालों को बल देते हैं ।" 47

इस उपन्यास के अठारहवे अध्याय से उपन्यास की कथा में कृष्ण का प्रवेश होता है । इधर हस्तिनापुर में जब ये सब हो रहा था , उधर मथुरा में कृष्ण ने अन्यायी , अत्याचारी , पापी कंस का वध करके अपने माता-पिता देवकी-वसुदेव को कारागार से मुक्त

करके मथुरा के सिंहासन पर नाना उग्रसेन को बिठाया था । इस घटना की विशेषता यह है कि कंस-वध के उपरान्त कृष्ण या बलराम में से कोई राजा नहीं बनता है । युधिष्ठिर के एक प्रश्न के उत्तर में अक्रूर कृष्ण और जरासंघ के चरित्रगत अंतर को स्पष्ट करते हैं —

" जरासंघ के तथाकथित मित्रों — दामघोष , भीष्मक , शाल्व , दंतवक्त्र ... इनमें से किसीसे पूछो कि उन्हें जरासंघ की इच्छा के विरूद्ध कोई भी कार्य करने की स्वतंत्रता है ? नहीं । जरासंघ किसीको व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार नहीं देता । स्वतंत्र चिंतन का अवकाश नहीं है वहां पर । वे उसके मित्र नहीं , अधीनस्थ कर्मचारी हैं — वरन् दास हैं दास । अपनी इच्छा से तो वे अपने पुत्र-पुत्रियों के विवाह-संबंध तक नहीं कर सकते । उनके पारिवारिक संबंधों में भी जरासंघ का आदेश ही सर्वमान्य है । वह उनका सम्राट है , मित्र नहीं । जबकि कृष्ण के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता का बहुत महत्व है — किन्तु वहीं तक , जहां तक वह सामाजिक हित की विरोधी नहीं हो जाती । तुम देखो पुत्र । कृष्ण जब स्वार्जित राज्य का राजा नहीं बना , तो वह अपने मित्र राजाओं का सम्राट क्या बनेगा । राजा अथवा सम्राट बनने की महत्वाकांक्षा नहीं है उसके मन में । वह यदि कुछ चाहता है तो मात्र इतना ही कि मानवीय उत्पीड़न और अत्याचार समाप्त हो और प्रकृति के साथ मैत्री कर , मनुष्य सुख और चैन से जी सके । इसीलिए उसने मित्र बनाया है , पंचालराज द्रुपद को , मत्स्यराज विराट को ... और अब वह मित्र बना रहा है तुम्हें , पांडवों को , हस्तिनापुर को । कांपिल्य में राज्य द्रुपद का होगा , विराटनगर में मत्स्यराज विराट का , हस्तिनापुर में कुरुराज युधिष्ठिर का । कृष्ण इनका सम्राट नहीं होगा । कृष्ण कर्मयोगी है , अधिकार-भोगी नहीं । "[48]

युधिष्ठिर का राज्य कैसा होगा उसकी झलक हमें युवराज्याभिषेक के समय उसके उद्बोधन से मिल जाती है , और यहां प्रकारान्तर से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण अपने साथ किन-किन लोगों को

लेकर चल रहा है, क्योंकि यह बिलकुल सही है कि "मेन इज़ नोन बाय द कम्पनी ही कीप्स." " यथा —

" मेरा लक्ष्य कुरुशासित प्रदेश में धर्मराज्य की स्थापना होगा। हमारी नीति होगी —आनृशंसता। हम किसीके भी प्रति नृशंस नहीं होंगे। वर्ण, जाति अथवा वर्गभेद के कारण किसीके अधिकार अथवा भावनाओं का निरादर नहीं होगा। मैं प्रत्येक वर्ण तथा वर्ग में से अपने लिए मंत्रियों की नियुक्ति करूंगा; और उनके प्रत्येक धर्म-सम्मत परामर्श का पूर्ण आदर करूंगा। प्रजा को न्याय, सम्मान, सुख-सुविधा तथा सुरक्षा प्रदान करना मेरा राजनीतिक दायित्व होगा। मेरे राजदंड ग्रहण करने पर भी यदि प्रजा को कोई दुःख हो, तो मुझे विधाता रौरव नरक का दण्ड दें।" [49]

इस प्रकार महाभारत के प्रस्तुत खण्ड से हमें आगामी घटनाओं और प्रवृत्तियों का आभास मिल जाता है और प्रतीत होता है कि युधिष्ठिर और पांडवों का मार्ग इतना सुकर नहीं होगा, क्योंकि धृतराष्ट्र और कौरवों के रहते यह संभव नहीं होगा। एक प्रकार से "संघर्ष का प्रारंभ" यहां भी हो चुका है।

(3) कर्म / महासमर भाग-3 / :

"अधिकार" के पश्चात् ही कर्मक्षेत्र का प्रारंभ होता है। धृतराष्ट्र भीष्म, अक्रूर आदि के दबाव से युधिष्ठिर को युवराज तो बना देते हैं, किन्तु उनकी मंशा साफ नहीं है। युद्धों और दिग्विजयों के नाम पर, हस्तिनापुर के राजकोष को समृद्ध करने के नाम पर वह उन पांचों भाइयों को हस्तिनापुर से बाहर खदेड़ना चाहता है, ताकि वे लोग लड़ें, खपें, मरें और अपने लिए अधिक से अधिक शत्रुओं को बटोरें। इधर हस्तिनापुर में दुर्योधन की जड़ें शासन में निरंतर मजबूत होती जाएं। यही बात समझाकर उसने गांधारी को प्रसन्न कर

लिया था ।[50]

उपन्यास का प्रारंभ कृष्ण के हस्तिनापुर से मथुरा लौट जाने वाले प्रसंग से होता है और अन्त कौरवों के राज्य-विभाजन से । कृष्ण और बलराम के मथुरा जाने के साथ ही हस्तिनापुर में षड्यंत्रों का दौर शुरू हो जाता है । धृतराष्ट्र येन केन प्रकारेण पांडवों को हस्तिनापुर से बाहर खदेड़ना चाहते हैं । युधिष्ठिर के युवराज्याभिषेक के पश्चात् दिग्विजयों तथा राजकोश को संपन्न करने के व्याज से धृतराष्ट्र पांडवों को युद्धों के लिए भेज देता है । किन्तु कुछ ही समय में अनेक राजाओं को जीतकर, करद राजाओं से बहुमूल्य भेंट-सौगाद, हीरे-जवाहरात,, तथा धन-धान्य लेकर वे लौटते हैं तो प्रजाजनों तथा अन्य राजाओं में उनका प्रभाव और भी बढ़ जाता है, जिससे दुर्योधन तथा उसकी चंडाल-चौकड़ी और धृतराष्ट्र की छाती पर सांप लोटने लगते हैं । तब उनको पुनः निष्कासित करने के लिए वह उनको वारणावत जाने का आदेश देता है । कारण विश्राम का बताया जाता है । परंतु यह एक महान षड्यंत्र है । भीष्म पितामह को कहा जाता है कि इतने दिग्विजयों के पश्चात् पांडवों को विश्राम और आनंद-प्रमोद की आवश्यकता है । वारणावत गंगा के किनारे एक मनोरम तीर्थस्थान है । वहां के शिवमंदिर का काफी माहात्म्य है । कुंती और पांडवों का मन वहां लगा रहेगा । विदुर को कुछ भनक पड़ जाती है, अतः वह पांडवों को सचेत कर देते हैं --" तब दुर्योधन ने भीम के प्रति बहुत प्रेम दर्शाया था और उसने भीम को मोदक खिलाये थे । .. अब अपने पिता के साथ मिलकर वह तुम सबसे प्रेम जता रहा है । तुम्हें बिदा करने भी आया था ; और वारणावत में तुम्हारे रहने के लिए भवन का जीर्णोद्धार कराने के लिए उसीका प्रिय मंत्री पुरोचन गया है । ... इसलिए तुमको कह रहा हूँ कि अपने इस प्रवास को मनोरंजन अथवा विहार की दृष्टि से न देखकर, अपने लिए संकट की घड़ीही समझो । ... सारी व्यवस्था करने वाले पुरोचन से भी सावधान रहो — कभी-

सेवा के छद्म में भी अनिष्ट किया जा सकता है । भवन के भीतर रहो तो अग्नि से सावधान रहो । भवन को अग्निसात किया जा सकता है, नौका को जल में डुबोया जा सकता है । ... जहां तक मेरी बुद्धि कार्य करती है, वे लोग तुम पर शस्त्रास्त्रों से आक्रमण करने का दुस्साहस नहीं करेंगे । उसमें वे पराजित भी हो सकते हैं, और विजयी होने पर भी, उन पर हत्या का आरोप प्रमाणित हो सकता है । इसलिए वे दूसरे प्रकार के उपकरणों का प्रयोग करेंगे । विष, अग्नि तथा जल उसमें प्रमुख है ।" 51

विदुर की चेतावनी के कारण सभी पांडव तथा कुंती सावधान हो जाते हैं और वारणावत पहुंचते ही विभिन्न ब्याजों से वहां के परिवेश को समझने का यत्न करते हैं । युधिष्ठिर भी वहां के कुलपति से मिलकर कुछ महत्वपूर्ण तथ्य एकत्रित करते हैं, जैसे कुछ दिनों से वहां के धार्मिक वातावरण में कुछ अंतर पड़ने लगा था, श्रद्धालुओं के स्थान पर सैलानी प्रकार के लोगों का जमावड़ा हो रहा था । उन लोगों में मदिरा और द्यूत का प्रचलन ज्यादा था । पुराने भवन का जीर्णोद्धार न करके उनके लिए एक नया भवन निर्मित हो रहा था । उनको कुछ सूत्रों से यह भी ज्ञात होता है कि बाजार में भूसे की एकदम किल्लत हो गई है । कुछ लोगों ने बाजार का सारा भूसा खरीद लिया है । विदुर भी कृष्ण की भांति एक कुशल राजनीतिज्ञ हैं । राजनीतिज्ञ की सबसे बड़ी शक्ति होती है इसलिए उनकी गुप्तचर-व्यवस्था । विदुर इस विषय में निपुण है । उनका अपना तंत्र है, जिससे बहुत कम समय में ही वे पता लगा लेते हैं कि पांडवों को कुन्ती -सहित भस्मीभूत करने के लिए उनके लिए "लाक्षागृह" का निर्माण किया जा रहा है । अतः एक खनक सहित वे अपने कुछ विश्वसनीय लोगों को पांडवों की सहायता के लिए भेज देते हैं । खनक की सहायता से वे लोग भीतर-ही-भीतर एक सुरंग का निर्माण करते हैं । मूल महाभारत कथा में यह बताया है कि पांडव तथा कुन्ती आखिर तक गाफिल होते हैं और सहदेव के

ज्योतिष-शास्त्र ज्ञान के कारण उन्हें सुरंग का पता चलता है । किन्तु डा. कोहली ने बिल्कुल सहज और स्वाभाविक तथा यथार्थ-विधि से पांडवों को लाक्षागृह से बचाया है ।

विदुर भीष्म तक पर यह रहस्य प्रकट नहीं होने देते हैं, केवल कृष्ण और महर्षि व्यास को कुछ संकेत देते हैं । सुरंग गंगा के पास निकलती है । वहां विदुर द्वारा तैनात एक नाविक उनको गंगा पार करवाता है । वहां से ये लोग हिडिम्ब वन में प्रवेश करते हैं । भीम द्वारा हिडिम्ब राक्षस का वध, हिडिम्बा का भीम की ओर कामातुर होना, कुन्ती के सामने राक्षस-विवाह का प्रस्ताव रखना, हिडिम्बा की सेवा और प्रेम-भावना के कारण "अस्थायी विवाह" के लिए कुन्ती का राजी होना, हिडिम्ब वन के निकट शालिहोत्र के आश्रम के पास कुटिया बनाकर रहना, भीम और हिडिम्बा का रमण, हिडिम्बा को भीम से गर्भ रहना, इन सबका वहां ब्राह्मण वेश में रहना, महर्षि व्यास का उन्हें मिलना, सांकेतिक ढंग से बात करना, बाद में बताना कि उनको कहां और कैसे प्रकट होना है उसका निर्धारण वे करेंगे, हिडिम्बा का एक साल के बाद शिशु को जन्म देना, घट जैसा मस्तक होने कारण "घटोत्कच" नाम रखना, प्रतिज्ञा के अनुसार हिडिम्बा का भीम से दूर निकल जाना, भीम से वचन लेना कि आवश्यकता पड़ने पर वह उसे जरूर याद करेगा, भीम भी उससे एक वचन लेता है कि वह उस शिशु का पालन-पोषण एक क्षत्रिय राजकुमार के रूप में करेगी न कि राक्षस के रूप में, महर्षि व्यास के संकेत पर एकचक्रा नगरी में देवप्रकाश नामक ब्राह्मण के यहां ब्राह्मण वेश में रहना, बकासुर का वध करना, कांपिल्य से संदेश आना कि उनको द्रौपदी के स्वयंवर में शामिल होना है; धौम्य ऋषि द्वारा व्यास के निर्देशन पर मत्स्य-वेधन की योजना रखना, कांपिल्य के लिए निकल पड़ना, रास्ते में अंगारपर्ण नामक गंधर्व के गर्व का दलन करना, व्यास के निर्देश पर कांपिल्य में धर्मरक्षित नामक कुंभकार के यहां ठहरना, धृष्टद्युम्न द्वारा पांचाली को वीर्यशुल्का घोषित करना,

पराक्रम-प्रदर्शन की शर्त मत्स्य-वेधन और कुलीनता , अनेक राजाओं का असफल होना , कर्ण का तैयार होना , किन्तु द्रौपदी द्वारा सूतपुत्र कहकर उसे अपमानित करना , अन्त में ब्राह्मणों के मंडप से ब्राह्मण वेशधारीअर्जुन काआना , मत्स्य-वेधन में सफल होना , क्षत्रिय राजाओं द्वारा आक्रमण , भीम और अर्जुन का अतुलनीय पराक्रम , भीम द्वारा द्रौपदी को उठाकर धर्मरक्षित के यहां ले जाना , कृष्ण का आना , कृष्ण के आने से द्रौपदी का आश्वस्त होना , परिवेदन की समस्या , निराकरण हेतु पांचों भाइयों से विवाह के लिए कृष्ण द्वारा द्रुपद को राजी कर लेना , सातों का हस्तिनापुर पहुंचना, भीष्म को सही वस्तु-स्थिति का ज्ञान होना , पांडवों के जीवित होने से प्रसन्नता , धृतराष्ट्र का नाटक आदि घटनाओं को इस उपन्यास में उपन्यस्त किया गया है । पांडवों की कथा के साथ-साथ कृष्ण और यादवों की कथा भी चलती है , स्यमंतक मणि के कारण कृष्ण की प्रेयसी व पत्नी सत्यभामा के पिता सत्राजित का शतधन्वा द्वारा वध , बलराम और कृष्ण द्वारा उसका पीछा करना , मिथिला के पास सुदर्शन चक्र द्वारा शतधन्वा का वध करना , स्यमंतक का न मिलना , फलतः बलराम के मन में कृष्ण के लिए दरार प~~ड़~~ पड़ना , अंततः स्यमंतक को ढूंढकर उसे अक्रूर के हवाले करना , यादवों का निरंतर विलासी होते जाना , उससे कृष्ण का निराश व दुःखी होना जैसी घटनाएं भी यहां निरूपित हुई हैं ।

जब पांडव आ जाते हैं तब फिर दुर्योधन विवाद खड़ा करता है । वारणावत के पश्चात् पांडवों को मरा हुआ मानकर धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को युवराज घोषित कर दिया था । अब दुर्योधन उस पद को छोड़ना नहीं चाहता है । न चाहते हुए भी भीष्म को छाती पर पत्थर रखकर कुरुराज्य के विभाजन को स्वीकारना पड़ता है । राज्य के नाम पर पांडवों को खांडववन मिलता है , जो विश्व-भर के दस्युओं , राक्षसों तथा दुर्वृत्तों का अड्डा है । भीषण जंगल है , जंगल-राज है , शासन जैसी कोई चीज नहीं है और ऊपर से

इन बदमाशों को देवराज इन्द्र का आश्रय प्राप्त है । महल के नाम पर एक पुराना खंडहर है जहां कभी पुरुरवा , आयु और ययाति जैसे कुरुओं के पूर्वज राज करते थे । 52

उपन्यास में तत्कालीन समाज व उसके परिवेश की कई मान्यताओं व रूढ़ियों का उल्लेख भी मिलता है । एक स्थान पर विदुर महर्षि व्यास से अपनी व्यथा बताते हुए कहते हैं कि आप मुझे अपने साथ ले जाते तो दासी पुत्र होते हुए भी मैं आपकी तरह ऋषि कहलाता , जैसे आपके पिता पराशर आपको अपने साथ ले गये थे । यदि वे न ले जाते तो आप भी निषाद-कन्या पुत्र ही कहलाते । तब महर्षि व्यास उनको नियोग-धर्म के संदर्भ में बताते हैं —" नियोग का धर्म अपने लिए संतान प्राप्त करना नहीं है ; वह संतान का दान है । यह जानते हुए भी कि यह पुत्र मेरा है — सुख में है या दुःख में — उसके प्रति अपने मन में मोह विकसित नहीं करना है , तभी तो वह दान है । वह संतान तो , मां तथा उसके पति के वंश की है । इसलिए विदुर ! तुम्हें इस वंश में रहना पड़ा । तुम्हारा जन्म विचित्रवीर्य के क्षेत्र से भी नहीं हुआ ; किन्तु तुम्हारी माता , इस क्षेत्र के स्थानापन्न के रूप में आयी थी पुत्र! अतः तुम्हें इस वंश में रहना होगा ।" 53

पांचाली का विवाह पांचों पांडवों से होता है । मूल कथा में तो यह कहा गया है कि भीम पांचाली को अर्जुन के मत्स्य-वेधन के पश्चात् उठाकर भागता है, और कुंभकार के यहां बाहर से चिल्लाता हुआ जाता है कि देखो मां मैं क्या लाया , तब कुन्ती स्वभाववश कहती है कि लाया है तो पांचों भाई बांट लो । अब मां के वचन को मिथ्या न करने के हेतु पांचों भाइयों का विवाह द्रौपदी से होता है । राजगोपालाचारी ने इस प्रसंग को इस रूप में लिया है कि द्रुपद जब द्रौपदी के बहु-पतित्व का विरोध करते हैं , तब युधिष्ठिर उनको समझाते हुए कहते हैं --" ओ किंग , काइण्डली एक्सक्यूज़ अस , इन ए टाईम आफ ग्रेट पेरिल वी वाउड धेट वी वुड शेर आल थिंग्स इन कोमन एण्ड वी केन नोट ब्रेक धेट प्लेज. अवर मधर हेज कमाण्डेड अस सो."54 किन्तु डा.

कोहली ने इसके लिए परिवेदन का कारण बताया है । यथा — " बड़े भाइयों के रहते अविवाहित रहते , अर्जुन का विवाह परिवेदन है , जो पाप है ; अतः अर्जुन ने कृष्णा मुझे समर्पित कर दी है । मेरे भाई वंचित न हों , इसलिए मैं अपने स्वत्व को उनके साथ बांटना चाहता हूं । घटनाओं ने कुछ ऐसा मोड़ लिया है कि हमें मानना पड़ रहा है कि भीम की सहायता के बिना कदाचित् अकेला अर्जुन वीर्यशुल्का का विजेता न हो पाता , अतः हम यह मानते हैं कि भीम और अर्जुन -- दोनों ने मिलकर पांचाली को जीता है । यदि हम तीन भाई उससे विवाह करते हैं , तो नकुल और सहदेव के प्रति नृशंसता होगी । पांचाली में हम पांचों भाइयों की आसक्ति है ; अतः हम नहीं चाहते कि वह किसी एक की पत्नी बने और हममें किसी प्रकार का वैमनस्य उत्पन्न हो । हम नहीं चाहेंगे कि हमारी एकता किसी भी प्रकार खंडित हो ।"[55] पांचालों में पहले बहुपतित्व की प्रथा थी , किन्तु उसे अनुचित समझकर वे उसका परित्याग कर चुके थे और उस पुरानी प्रथा को पुनः लौटाना नहीं चाहते थे । किन्तु अंततः महाराज द्रुपद युधिष्ठिर की बात को मान लेते हैं ।

डा० त्रिभुवनसिंह ने इस उपन्यास के संदर्भ में लिखा है — "महासमर-3 / कर्म नामक तृतीय खण्ड / इस उपन्यास श्रृंखला का महत्त्वपूर्ण उपन्यास है , जिसमें "महाभारत " में वर्णित वारणावत कांड से लेकर द्रौपदी के स्वयंवर के पश्चात् पांडवों के पुनः हस्तिनापुर आने तथा हस्तिनापुर राज्य के विभाजन से सम्बद्ध घटनाओं का चित्रण है । इन घटनाओं में आकर्षण तो है ही साथ ही भीम और अर्जुन के असाधारण कार्यों को प्रस्तुत करने का भी अवसर इस खण्ड में मिल गया है । इससे उपन्यास की पठनीयता भी बढ़ी है और उसका फलक भी विस्तृत हुआ है । वारणावत में मृत्यु के मुख से बच निकलने और पांडवों के पुनः जम्बूद्वीप के राजाओं के सम्मुख प्रकट होने की प्रक्रिया की जटिलता को कोहलीजी ने भलीभांति समझा है और उन्होंने बड़ी कुशलता के साथ इस प्रसंग को उपन्यास में प्रस्तुत किया है । जिन लोगों की सहायता से

पांडव पुनर्जीवन प्राप्त कर कर सके हैं, उनके कौशल और उनसे सम्बन्धित घटनाओं का विस्तृत विवरण इस खण्ड का महत्वपूर्ण आकर्षण है।" 56

§4§ धर्म /महासमर भाग-4 / :

==========================

विवेक और न्याय-संपन्न व्यक्ति जब "कर्म" की ओर प्रवृत्त होते हैं, तो उनके भीतर "धर्म" की भावना स्वयमेव जगती है। डा. कोहली द्वारा प्रणीत "धर्म" उपन्यास 415 पृष्ठ और 39 अध्यायों का एक बृहद उपन्यास है। इसकी कथा खांडववन या खांडवप्रस्थ के जीर्णोद्धार से प्रारंभ होकर द्यूतसभा में युधिष्ठिर द्वारा अपना सर्वस्व हार जाने के उपरान्त धृतराष्ट्र द्वारा प्रदत्त बारह वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास पर समाप्त होती है। उस एक वर्ष के अज्ञातवास में यदि उनको पहचान लिया जाए या ढूंढ लिया जाए तो उन्हें पुनः बारह वर्षों के लिए वनवास जाना होगा, इस प्रकार की बड़ी ही क्रूर और धूर्त शर्तें धृतराष्ट्र ने रखी थीं। इन्हें सुनते ही भीष्म सोचते हैं —" धृतराष्ट्र ने इस समय चरम धूर्तता का प्रमाण दिया है। उसने पांडवों से उनका सर्वस्व छीनकर भी एक प्रकार से उन्हें अनुगृहीत किया है। ... भीष्म ने अनुभव किया, अपने इन पौत्रों के प्रति उनके मन में स्नेह से कहीं अधिक श्रद्धा जन्म ले रही थी ... उन्होंने प्रतिकार में समर्थ और सक्षम होते हुए भी, यह सारा अपमान सहा, किन्तु अपना धर्म नहीं छोड़ा। कितने उदात्त मानव हैं वे! तभी तो कृष्ण उनसे इतना प्रेम करते हैं। ... और यह दुर्योधन! ... दुष्ट ... नीच ... अत्याचारी और अहंकारी। कैसी बाध्यता है भीष्म की कि इसे भी उन्हें अपना पौत्र स्वीकार करना पड़ता है।" 57

माता कुन्ती और द्रौपदी सहित पांडव खांडववन की ओर प्रस्थान करते हैं। कृष्ण भी उनके साथ जाते हैं। वे अर्जुन को कहते हैं —" धनंजय! यह क्षेत्र चाहे कौरवों के राज्य के अन्तर्गत माना जाता है, किन्तु है यह यमुना के तट पर, गंगा-तट पर

नहीं । यमुना हमारी नदी है । मथुरा , वृन्दावन , गोकुल ... कुछ भी तो यहां से दूर नहीं है ।"[58] अतः यह प्रमाणित हो जाता है कि हस्तिनापुर आज का दिल्ली नहीं है । वस्तुतः पांडवों द्वारा बसाया गया इन्द्रप्रस्थ नगर ही आज का दिल्ली है । इसीलिए तो पांडवों का पुराना किल्ला यहां मिलता है ।

उनके वहां पहुंचने के उपरान्त महर्षि व्यास भी वहां पहुंचते हैं । वे पांडवों को धर्म का उपदेश देते हुए कहते हैं —" तुम धर्म की रक्षा करो , धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा । ... इस निर्माण से तुम्हारा अहंकार न जागे । नगरी का नाम अपने नाम से मत रखना , किसी भी मनुष्य के नाम पर भी मत रखो । इसे देवताओं को समर्पित कर दो । चाहो तो देवराज के नाम पर ही इसका नाम इन्द्रप्रस्थ रख लो ।"[59] और किन्हीं गूढ़ कारणों से कृष्ण भी इसका विरोध नहीं करते । पूर्ववर्ती पृष्ठों में निर्दिष्ट किया गया है कि यह सम्पूर्ण क्षेत्र जो दस्युओं , हिंस्र पशुओं और तक्षक जैसे नागों से भरा हुआ है , इन्द्र द्वारा रक्षित है । इन्द्रप्रस्थ नाम रखकर इन्द्र का आधा कोप तो वे वैसे ही दूर कर देते हैं ।

इन्द्रप्रस्थ के निर्माण के उपरान्त धर्मराज्य की स्थापना करना, देवर्षि नारद का आगमन और उनकी सब जानने की चेष्टा , द्रौपदी विषयक व्यवस्था करना कि पांचाली प्रत्येक पांडव के घर में एक-एक वर्ष निवास करे और उस काल में अन्य भाइयों के लिए वह पर-स्त्री रहे तथा इस नियम के भंग होने पर बारह वर्ष ब्रह्मचर्यपूर्ण वनवास करे ,[60] फलतः पांडवों के अन्य विवाहों की बात, अर्जुन द्वारा शस्त्रागार का निर्माण , युधिष्ठिर-द्रौपदी का उसे देखने जाना , धर्म-रक्षा हेतु अर्जुन द्वारा उनके एकान्त का भंग , युधिष्ठिर-द्रौपदी के मना करने पर भी स्वानुशासन के तहत अर्जुन का बारह वर्षों के लिए वनवास हेतु निकल पड़ना ,[61] हरद्वार के निकट नागराज कौरव्य की पुत्री उलूपी का अर्जुन पर मुग्ध हो जाना , अर्जुन के सारे तर्कों को निरस्त कर देना , उलूपी के अस्थायी पतित्व के प्रस्ताव को स्वीकार करना, (62) लेपक अक्षय के बहाने वर्ण-व्यवस्था पर धौम्य ऋषि द्वारा विचार ,(63)

अर्जुन का मणिपुर जाना, वहाँ के राजा चित्रवाहन की सहायता, राजकुमारी चित्रांगदा से विवाह, बभ्रुवाहन का जन्म;[64] युधिष्ठिर की तक्षक-विषयक चिन्ता, अर्जुन का प्रभास क्षेत्र में आना, कृष्ण से भेंट, सुभद्रा-हरण की कृष्ण-अनुमोदित योजना,[65] उसमें अर्जुन का सफल होना, बलराम-कृतवर्मा आदि का क्रोधित होना, कृष्ण के तर्कों से सबका निरूत्तर हो जाना, अर्जुन-सुभद्रा का इन्द्रप्रस्थ पहुँचना, बारह वर्षों की अवधि का समाप्त होना, यादवों का कृष्ण-सहित इन्द्रप्रस्थ आना, इन्द्रप्रस्थ के विकास की योजनाएँ, खांडववन के दहन-कार्य में अग्नि की प्रत्यक्ष तथा वरुण की प्रच्छन्न सहायता, अर्जुन को अग्नि द्वारा गांडीव धनुष तथा दिव्य-रथ की प्राप्ति और कृष्ण को अग्नि द्वारा सुदर्शन-चक्र तथा वरुण द्वारा कौमोदिकी नामक गदा का प्राप्त होना;[66] (यहाँ डा. कोहली से एक तथ्य-मूलक गलती हो गई है, उन्हें सुदर्शन चक्र अग्निदेव से अब प्राप्त हुआ था, किन्तु उसका प्रयोग इसके पूर्व "कर्म" उपन्यास में शतधन्वा के वध में कर चुके हैं।[67]) इन्द्र का अधिक विरोध न करना और अर्जुन को दिव्यास्त्रों तथा देवास्त्रों के प्रदान करने का वचन देना, खांडववन दहन से मयदानव नामक अद्भुत वास्तुकार को प्राप्त करना, उसके द्वारा इन्द्रप्रस्थ में "स्फटिक-भवन" का निर्माण करना, जरासंध-वध,[68] जरासंध के स्थान पर उसके पुत्र सहदेव का अभिषेक, कृष्ण द्वारा युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ के लिए प्रेरित करना, जरासंध वध के उपरान्त सौ बन्दी राजाओं की मुक्ति, उनके अतिरिक्त अनेक राजाओं द्वारा पांडवों का आधिपत्य स्वीकार कर उनका मांडलिक राजा होना, शिशुपाल की भीम से भेंट, राजसूय-यज्ञ का प्रारंभ, भीष्म पितामह तथा गुरु द्रोण को यज्ञ में तंत्र-स्वामी के रूप में नियुक्त करना; महर्षि व्यास यज्ञ के ब्रह्मा, सुसामा यज्ञ के उद्गाता, याज्ञवल्क्य अध्वर्यु और ऋषि धौम्य और पेल का यज्ञ-होता होना;[69] अग्रपूजा के लिए भीष्म द्वारा कृष्ण के नाम के प्रस्ताव पर शिशुपाल का अर्नगल बोलना और उसी कारण अति हो जाने पर कृष्ण द्वारा उसका वध;[70] शिशुपाल के पुत्र धृष्टकेतु का

राज्याभिषेक , दुर्योधन और शकुनि द्वारा द्यूतसभा के लिए धृतराष्ट्र को राजी कर लेना , द्यूत के माध्यम से पांडवों के सर्वस्व -हरण का षड्यंत्र, तोरण-स्फटिक सभा का आयोजन , पांडवों को ससम्मान आमंत्रित करना, धर्म-विषयक खोटे ख्यालों सेप्रेरित होकर धर्मराज का द्यूतपटल पर बैठना ; एक के बाद एक लगभग उन्नीस दावों में धर्मराज का अपने भाइयों तथा द्रौपदी सहित सबकुछ हार जाना ; [71] धर्मराज का एक चातुर्य कि पहले स्वयं को हारने के उपरान्त बाद में द्रौपदी को दांव पर लगाना , जिस युक्ति को लेकर द्रौपदी का सबको निरूत्तर कर देना , द्रौपदी का भयंकर अपमान , दुःशासन द्वारा रजस्वला एकवस्त्रा द्रौपदी को केशों से खींचकर घसीटते हुए सभा में लाना , द्रौपदी द्वारा यह कहने पर कि वह कृष्ण की सखी है दुःशासन का भय से जड़ीभूत हो जाना ; [72] भीम की प्रतिज्ञाएं , गांधारी का सभा में आना , धृतराष्ट्र की धूर्तता , पांडवों की दासता को खत्म करने हेतु उनको बारह वर्षों का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास देना [73] आदि अनेक घटनाओं को यहां उपन्यस्त किया गया है ।

प्रस्तुत उपन्यास में वह प्रसंग भी चर्चित हुआ है , जो अति-प्रचलित है , और जिसमें कहा गया है "स्फटिक-भवन" में दुर्योधन के पानी में गिरने पर द्रौपदी ने व्यंग्य में कहा था कि "अंधे पिता का पुत्र भी अंधा होता है " , और जिसका प्रतिशोध लेने के लिए दुर्योधन "स्फटिक-तोरण-सभा " में द्रौपदी को अपमानित करते हुए उसे निर्वस्त्र करने का यत्न करता है । डा॰ कोहली ने इस प्रसंग को इस रूप में प्रस्तुत किया है कि द्यूतसभा के लिए धृतराष्ट्र को मनाने के लिए दुर्योधन इस पूरे प्रसंग को "द्वीरूह" कर देता है । केवल भीम ने तब उसे "धृतराष्ट्र-पुत्र" कहा था । [74] भीम के इस संबोधन में अपनी कल्पना के रंग भरकर , उसे द्रौपदी के नाम चढ़ाकर , प्रचारित करता है । उपन्यास में एक स्थान पर कहा गया है —" उनका (धृत-राष्ट्र का) पूर्वाग्रह-ग्रस्त मन कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था

कि दुर्योधन ने ये संवाद किस प्रकार गढ़े हैं।"[75]

इन सभी उपन्यासों के प्रकाशकीय वक्तव्यों में एक बात बहुत ही स्पष्ट रूप से कही गई है कि घटनाएं तथा पात्र "महाभारत" से सम्बद्ध है; किन्तु ये सभी उपन्यास हैं -- आज के लेखक का मौलिक चिंतन व सृजन। फलतः इनमें प्रसंगोपात समसामयिक परिवेश या चिंतन को संलग्नित किया गया है। यथा --" महाशक्तियों का छल-छंद किसीसे छिपा नहीं है। वे कितनी भी सहायता करें, कितने भी प्रेम और और सौहार्द का प्रदर्शन करें, किन्तु उनका कोई भी कार्य निःस्वार्थ नहीं होता।"[76] कृष्ण द्वारा अग्नि को कही गयी यह बात क्या आज की महाशक्तियों पर लागू नहीं होती?

इन्हीं महाशक्तियों के संदर्भ में एक स्थान पर युधिष्ठिर भीम से कहते हैं --" सत्य यह है भीम कि हम अभी इन महान दैवी शक्तियों को भली प्रकार समझ नहीं पाए हैं। एक ओर इन्द्र हमारा मित्र है और दूसरी ओर वह हमारे ही राज्य में हमारे शत्रुओं को अभय दिए हुए हैं। ये महाशक्तियां मित्रों के राज्य में शत्रुओं का, और शत्रुओं के राज्य में मित्रों का पोषण क्यों करती हैं यह समझना बड़ा कठिन हो रहा है। इनकी योजनाएं क्या हैं, वे ही जानें। जाने क्यों वे स्वयं को अपने राज्य और अपनी प्रजा तक सीमित नहीं रख सकतीं। उन्होंने सारी सृष्टि में अपने हाथ-पांव पसार रखे हैं।"[77] क्या यह बात अमरिका भारत और पाकिस्तान के साथ जो खेल खेल रहा है, या गल्फ-कन्ट्रीज़ में जो दखलअन्दाजी कर रही है, उस पर लागू नहीं होती?

कहने का तात्पर्य यह कि लेखक चाहे ऐतिहासिक उपन्यास लिखें या पौराणिक, उसके पैर कहीं-न-कहीं अपनी जमीन पर होते ही हैं। उसकी एक नजर हमेशा वर्तमान के यथार्थ पर रहती है। प्रस्तुत

उपन्यास में अनेक स्थानों पर ऐसा समसामयिक चिंतन उपलब्ध होता है जिनमें राजनीति का अपराधीकरण, राजनेताओं और माफिया-ओं की मिली-भगत, गुण्डों और बदमाशों का कोई धर्म या संप्रदाय नहीं होता, नगर-निर्माण प्रक्रिया में उनका विरोध, ड्रग-ट्राफलिंग का व्यवसाय; पाकिस्तान, बांगलादेश और चीन का भारत की सीमाओं पर कोई-न-कोई खुराफात मचाना जैसी समसामयिक स्थितियों को उकेरा गया है।[78]

§5§ अन्तराल / महासमर भाग-5 / :
==========================

डा॰ कोहली का यह उपन्यास 368 पृष्ठ और 32 अध्यायों में विभक्त है। इसकी कथा का प्रारंभ "धर्म" के अन्त से होता है। वस्तुतः ये आठों उपन्यास एक महाकथा की विभिन्न कड़ियां हैं, एक दूसरे से जुड़ी हुई। पांडव धृतराष्ट्र के आदेशानुसार बारह साल के वनवास के लिए निकल पड़ते हैं। कृष्ण तथा उनके मित्र, धृष्टद्युम्न आदि युधिष्ठिर को बहुत समझाते हैं किन्तु वे अपने निर्णय पर अटल हैं -- "मैंने द्यूतसभा में बारह वर्षों के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास का वचन दिया है। मेरी इच्छा है कि मुझे अपने इस धर्म का पालन करने दिया जाए। इस समय हम दुर्योधन से युद्ध की योजना न बनाएं।"[79] इसके उपरान्त यह तय होता है कि द्रौपदी को छोड़कर पांडवों की अन्य रानियां -- सुभद्रा, देविका, बलंधरा, करेणुमती और विजया -- अपने पुत्रों सहित मायके में रहें और उनका उचित ढंग से पालन-पोषण करें, उनकी शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था करें और उनको क्षत्रिय राज-कुमारों के अनुकूल विभिन्न शस्त्रास्त्रों में प्रशिक्षित करें। कुन्ती अबकी बार उनके साथ न जाकर विदुर और पारंसवी के पास हस्तिनापुर में ही रहती है। यह एक प्रकार से उनकी तपस्या है।

उपन्यास के बृहद-पटल पर अनेकों घटनाएं आकार लेती हैं, जैसे धृतराष्ट्र द्वारा विदुर को निष्कासित करना, युधि-

ष्ठिर से मिलना , धृतराष्ट्र द्वारा संजय को पांडवों की खोज के लिए भेजना , विदुर का हस्तिनापुर लौट आना ,[80] महर्षि व्यास का हस्तिनापुर आना , धृतराष्ट्र को समझाना , धृतराष्ट्र का यह कहकर छूट जाना कि दुर्योधन को वे समझावें ,[81] ऋषि मैत्रेय का आना , विदुर-कुन्ती संवाद और उसमें कर्ण के प्रसंग का आना तथा कुन्ती का उससे सहानुभूति व्यक्त करना ,[82] धृष्टद्युम्न का पांचाली को मिलने आना , कृष्ण का आना , द्रौपदी का आक्रोश , कृष्णा को कृष्ण का आश्वासन कि कौरवों को उसके अपमान के लिए दंडित किया जाएगा ,[83] धृष्टद्युम्न का द्रौपदी के पुत्रों को लेकर कांपिल्य जाना, वहां उनका नाना से वार्तालाप ,[84] यादवों में बढ़ता पारस्परिक कलह, व्यास की पांडवों से चर्चा , व्यास का प्रस्ताव के अर्जुन को देवलोक में वैजयन्त इन्द्र के पास दिव्यास्त्रों और देवास्त्रों के लिए भेजा जाए ,[85] अर्जुन का प्रस्थान , इन्द्र से साक्षात्कार , अर्जुन को इन्द्र का परामर्श कि पहले अपनी तपस्या से महादेव से पाशुपतास्त्र प्राप्त करें और तदुपरान्त अमरावती आकर दिव्यास्त्रों और देवास्त्रों को प्राप्त करे,[86] किरात रूपधारी महादेव से अर्जुन का युद्ध और महादेव का प्रसन्न होना,[87] महादेव की कृपा होते ही यमराज , वरुण तथा कुबेर आदि देवों से क्रमशः दण्डास्त्र , वरुणपाश और अन्तर्धान नामक अस्त्रों को प्राप्त करना ,[88] युधिष्ठिर का ऋषि बृहदाश्व से द्यूतविद्या तथा अश्वविद्या सीखना ताकि धृतराष्ट्र कभी इतिहास न दोहरा सके ,[89] लोमश ऋषि द्वारा पांडवों को अर्जुन के समाचारों का मिलना , पांडवों का अर्जुन की दिशा में प्रस्थान , लक्ष्मणा के स्वयंवर की योजना के पीछे दुर्योधन की कूटनीति , धृतराष्ट्र का उससे प्रसन्न होना , कृष्ण-जाम्बवती के पुत्र सांब द्वारा लक्ष्मणा का हरण क्योंकि दुर्योधन ने द्वारका के यादवों को आमंत्रित नहीं किया था , सांब का पकड़ा जाना , दुर्योधन द्वारा उसको कारावास में डाल देना , कृष्ण की हस्तिनापुर पर आक्रमण की तैयारी , बलराम द्वारा समझाना कि वे सांब तथा लक्ष्मणा को अपने साथ सकुशल ले आयेंगे , दुर्योधन की कूटनीति , बल-राम की उदारता का लाभ लेकर उनको वचनों में बांध देना कि

पांडव- कौरवों के भविष्यत् युद्ध में वे तथा उनके कुल के सभी सदस्य तट-स्थ रहेंगे ,[90] अमरावती में अर्जुन का गंधर्व चित्रसेन से मृत्स नृत्य सीखना, वैजयन्त इन्द्र के कहने पर उर्वशी का रतिदान की भावना से प्रेरित होकर अर्जुन के सम्मुख उपस्थित होना और अर्जुन का उसे मातृदृष्टि से देखना , उर्वशी का रूष्ट होकर अर्जुन को नपुंसक , पुंसत्वहीन , क्लीव आदि कहकर कहना ;[91] घटोत्कच का मिलना , द्रौपदी द्वारा उसकी माता हिडिंबा के विचार जानना और द्रौपदी का प्रभावित होना , भीम-हनुमान प्रसंग , द्रौपदी का अपहरण करने के प्रयत्न के कारण भीम द्वारा जटा-सुर का वध ,[92] गंधमादन क्षेत्र में राजर्षि आष्टिषेण के आश्रम में रहना, जटासुर के सेनापति मणिमान का भीम द्वारा वध , कुबेर का पहले क्रोधित होना किन्तु कारण जानने पर प्रसन्न होना और भीम के कार्य को पति-धर्म बताना ,[93] अर्जुन का आना , अर्जुन-द्रौपदी संवाद , अर्जुन का अनेक दिव्यास्त्रों तथा देवास्त्रों को लेकर आना तथा और भी अनेक ऐसे दिव्य ास्त्रों और देवास्त्रों के निर्माण और परिचालन की पद्धति को सीखxxxxx लेने की बात को बताना ,[94] नारद द्वारा आकर समझाना कि इसका परीक्षण अभी अर्जुन न करें क्योंकि उससे वहां के पर्या-वरण को खतरा हो सकता है और प्रकृति का संतुलन गड़बड़ा सकता है ,[95] कृष्ण की पांडवों से अज्ञातवास से सम्बद्ध चर्चा तथा कृष्ण-मार्कण्डेय का धर्म-विषयक वार्तालाप[96] आदि-आदि ।

इस प्रकार "अंतराल" उपन्यास में पांडव हस्तिनापुर तथा इन्द्रप्रस्थ से दूर हिमालय के वन-प्रदेशों में अपने बारह वर्षों का वनवास पूरा करते हैं , इतना ही नहीं अनेक ऋषियों के आश्रमों में रहकर उनसे ज्ञानचर्चा और धर्मचर्चा करके स्वयं को तपाते हैं । महर्षि व्यास के कहने पर अर्जुन देवलोक जाकर अनेक दिव्यास्त्रों और देवास्त्रों को प्राप्त करता है , इतना ही नहीं ऐसे अनेक शस्त्रास्त्रों के निर्माण और परिचालन की विधि भी सीख लेता है , ताकि आवश्यकता पड़ने पर ऐसे शस्त्रों का निर्माण किया जा सके । वस्तुतः यह अंतराल उनके ज्ञान , तपश्चर्या और

प्रशिक्षण का अंतराल है । इन तमाम वर्षों में दुर्योधन के गुप्तचर पांडवों के समाचार देते रहते हैं । दुर्योधन और उसकी चंडाल-चौकड़ी तथा धृतराष्ट्र सोचते हैं कि xx हिमालय की भयंकर शीत में ये लोग मर-खप जायेंगे , किन्तु जब उनको समाचार मिलते हैं कि ये लोग वहां से मैदानी इलाके में आ गए हैं तो धृतराष्ट्र का बहुत दुःख होता है , किन्तु ऊपर-ऊपर से प्रसन्न होने का नाटक भी करता है । शिव की आराधना से अर्जुन काम पर विजय प्राप्त कर लेता है , अन्यथा उर्वशी जैसी अप्सरा के कामाह्वान पर स्वयं पर संयम रखना उसके लिए असंभव हो जाता । प्रेम के सच्चे स्वरूप को अब वह पहचानने लगा है । पहले वाला अर्जुन होता तो कदाचित इस अभियान में और सुन्दरी पत्नियों को बटोर लाता । इस बात को लेकर द्रौपदी अपने इस "फाल्गुन" से खूब हास-परिहास भी करती है । शुरू-शुरू में तो द्रौपदी युधिष्ठिर की धर्म-भावना को लेकर काफी रूष्ट थी , किन्तु शनैः शनैः ही वह अपने पति की महानता , उदारता , धर्म-भावना और आनृशंसता को समझने लगती है और उतने ही परिमाण में उनके लिए उसके हृदय में उनका मान और आदर बढ़ता जाता है ।

द्यूतसभा में रजस्वला एकवस्त्रा द्रौपदी को निर्वस्त्र करने के दुःशासन के प्रयत्न को कृष्ण ने निरस्त्र कर दिया था और जैसे-जैसे दुःशासन द्रौपदी के चीर को खींचता जाता था , नया चीर आ जाता था , ऐसी मिथक-कथा लोगों में प्रचलित है । डा. कोहली ने इसका निराकरण "धर्म" में तो सांकेतिक ढंग से कर ही दिया था, किन्तु यहां द्रौपदी स्वयं अपने शब्दों में उसे स्वीकार करती है । कृष्ण के आने पर द्रौपदी जब अपना आक्रोश व्यक्त करती है , तब कृष्ण उसे आश्वासन देते हुए कहते हैं -- " धर्मराज उन्हें दंडित करेंगे । पांचों पांडव मिलकर उन्हें दंडित करेंगे । ... वे नहीं करेंगे , तो मैं कौरवों को दंडित करूंगा । यदि xx धर्मराज को आपत्ति न हो ; तो मैं यहीं से , हस्तिनापुर चलने को प्रस्तुत हूं । उन सारे पापियों का

संहार मैं स्वयं अपने हाथों से, वैसे ही कर दूंगा, जैसे शिशुपाल का किया था।' [97] तब द्रौपदी कहती है --' मैं तुम्हारे वचन पर अविश्वास नहीं करूंगी केशव। मैं तो मानती हूं कि कौरवों की उस सभा में, मेरी रक्षा, तुमने ही की है सखे। ... तुम वहां उपस्थित चाहे नहीं थे, किन्तु तुम वहां वर्तमान थे। दुःशासन के मन में तुम्हारा ही भय था, जिसने मेरी रक्षा कर ली; नहीं तो उन पिशाचों ने अपनी ओर से कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी थी।' [98]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक डा. नरेन्द्र कोहली ने एक और स्पष्टता की है। यहां अमरावती या देवलोक कदाचित हिमालय के वे अलंघ्य उच्च शिखर है, जहां सामान्य मनुष्यों का पहुंचना दुष्कर है। इन्द्र भी कोई एक व्यक्ति नहीं है। राम के समय के इन्द्र, पुरूरवा के समय के इन्द्र और अर्जुन के समय के इन्द्र अलग-अलग हैं। वस्तुतः यह एक पद है। जिस समय जो भी देवराज होता है वह इन्द्र है। अर्जुन कहता है --' वर्तमान इन्द्र मेरे प्रति क्या भाव रखते हैं, कह नहीं सकता; किन्तु मैं उनके प्रति पूज्य भाव लेकर आया हूं।' [99]

इसी प्रकार महाभारत में भीम-हनुमान प्रसंग भी आता है। डा. कोहली ने भी इस प्रसंग को लिया है। हिमालय के अलंघ्य शिखरों को जब भीम लांघने की कोशिश करता है और उसमें जब अहंकार स्फीत होता है तब रास्ते में एक महाकाय वानर पड़ा मिलता है। भीम उसकी पूंछ को हटाना तो दूर, हिला भी नहीं सकते और तब उसका अभिमान पानी-पानी हो जाता है। हनुमान प्रकट होते हैं और भीम से कहते हैं कि पवन-पुत्र होने के नाते मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूं। किन्तु बाद में इस पूरे प्रसंग को डा. कोहली भीम को आया हुआ एक स्वप्न बताकर उसके चमत्कार तत्व को दूर कर देते हैं। [100]

अपने अन्य उपन्यासों के भांति यहां भी डा. कोहली ने कुछ समसामयिक चिंतन प्रस्तुत किया है। अर्जुन जब अमरावती से दिव्यास्त्रों और देवास्त्रों को लेकर आता है और अपने अति-उत्साह में दूसरे दिन

प्रातः उसके परीक्षण की बात करता है तब आश्रम के कुलपति को इस बात की चिन्ता होती है और वे सोचते हैं कि अर्जुन को इस परीक्षण से रोकना चाहिए । तब देवर्षि नारद आकर उसे समझाते हैं कि इस पर्वतीय शान्त परिवेश में इसका परीक्षण ठीक नहीं रहेगा --" तुम इन दिव्यास्त्रों का परीक्षण करने जा रहे हो , ताकि तुम्हारे भाइयों के सम्मुख , इनकी क्षमता का प्रदर्शन हो सके । किन्तु तुमने यह नहीं सोचा पुत्र । कि इनके परीक्षण से यहां की×प्राकृतिक प्रकृति नष्ट होगी । प्राकृतिक संतुलन बिगड़ेगा । असंख्य जीव-जंतु व्यर्थ ही मारे जाएंगे ।"[101] और यही बात हमारे आज के पर्यावरण-विज्ञानी भी कह रहे हैं । यही कारण है कि भारत सरकार ने मिसाइल का परीक्षण पोखरण में किया था ।

§6§ प्रच्छन्न / महासमर भाग-6 / :
==============================

" प्रच्छन्न " छ सौ अठारह पृष्ठ और साठ अध्यायों का एक बृहदकाय उपन्यास है । इस श्रृंखला का सबसे बड़ा उपन्यास । "प्रच्छन्न" शब्द के तीन अर्थ "नालंदा शब्दकोश" में दिए गए हैं -- लपेटा या ढंका हुआ , प्ररिवे× परिवेष्टित और छिपा हुआ ।[102] महासमर के इस खण्ड में डा कोहली ने महाभारत की जो कथा वर्णित की है वह उनके तेरहवें साल के अज्ञातवास की है । बारह साल के प्रकट या प्रत्यक्ष वनवास के उपरान्त एक साल पांडवों को प्रच्छन्न रूप से , स्वयं को परिवेष्टित करते हुए , छिपकर रहना है । यदि इस तेरहवें साल में वे कौरवों द्वारा पहचान लिए जाते हैं , तो उनको पुनः बारह साल के लिए वनवास के लिए जाना होगा , इस प्रकार की धूर्त शर्त धूर्तराज धृष्ट्रराष्ट्र ने पांडवों के समक्ष रखी थी । बारह साल तो वे उत्तरांचल और हिमालय के वनों में स्थित ऋषियों के विभिन्न आश्रमों में धर्मचर्या करते-करते गुजार लेते हैं , किन्तु तेरहवां साल निकालना बड़ा कठिन है , क्योंकि धूर्त कौरव इनको ढूंढ निकालने

की हर संभव कोशिश कर सकते हैं , बल्कि इसके लिए वे जमीन-आसमान एक कर सकते हैं । उनके पास सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में गुप्तचरों और गूढ़ पुरुषों का जाल है , दूसरे इनके मित्रों की संख्या भी ज्यादा है । उनकी संख्या — पांच पांडव और द्रौपदी — पांच पुरुष और एक स्त्री — तथा भीम का बृहदकाय डिलडौल , उनकी अपूर्व और अद्वितीय शक्ति और तेज , ये सब इनके अभिज्ञान के माध्यम हो सकते हैं ।

"प्रच्छन्न" उपन्यास की कथावस्तु को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है -- साठ अध्यायों के इस उपन्यास में तीसवें अध्याय में अज्ञातवास की बात आती है , अर्थात् वहां से उनका अज्ञातवास प्रारंभ होता है । "अंतराल" के अन्त में बताया गया है कि उनके बारह वर्ष का वनवास पूरा होने वाला है । कृष्ण पांडवों से कहते हैं --" मेरा अनुमान है कि अब आप लोगों से मेरी भेंट आपके अज्ञातवास के पश्चात् ही होगी ।"[103] अतः "प्रच्छन्न" उपन्यास का लगभग अर्द्ध भाग अज्ञातवास के पहले का है और उसमें पांडवों के कुछ दिनों या महीनों की कथा है और उसका उत्तरार्द्ध अज्ञातवास की कथा को लिए हुए है । "प्रच्छन्न" उपन्यास के अंत में पांडवों का अज्ञातवास समाप्त हो जाता है और धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाई तथा द्रौपदी सहित मत्स्यराज विराट की सभा में अपने वास्तविक रूप में प्रत्यक्ष होते है , तब विराट अपने दोनों हाथ जोड़कर कहते हैं --" आपके विषय में न जानने के कारण मुझसे तथा मेरे परिवार वालों से जो कोई भूल हुई हो , उसे उदारतापूर्वक क्षमा करें और मेरा राज्य , मेरा कोष तथा मेरी सेना को स्वीकार करें । अब यह सबकुछ आपका है ।"[104] उसके उत्तर में युधिष्ठिर अत्यन्त विनीत स्वर में कहते हैं-- "महाराज ! हम आपके कृतज्ञ हैं कि आपने एक वर्ष तक हमारा पालन किया । अब हम आपके राज्य का अपहरण कैसे कर सकते हैं । हमें आपका नहीं अपना राज्य इन्द्रप्रस्थ का राज्य, दुर्योधन से प्राप्त करना है । आप उसमें हमारी सहायता करें ।"[105] तब विराट पांडवों से अपना स्थायी सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा से अपनी

पुत्री उत्तरा का विवाह धनंजय से हो ऐसी इच्छा व्यक्त करते हैं, तब अर्जुन उसके उत्तर में कहते हैं -- "विराटराज । मैं आपकी पुत्री और अपनी प्रिय शिष्या उत्तरा को अपनी पुत्रवधू के रूप में ग्रहण करने का इच्छुक हूं । आप शायद जानते हों कि मेरा ज्येष्ठ पुत्र अभिमन्यु सुभद्रा का पुत्र और श्रीकृष्ण का भागिनेय है ।" 106

इस प्रकार "अंतराल" की कथा जहां बारह वर्षों की है, वहां "प्रच्छन्न" की कथा एक वर्ष तथा कुछ दिनों की है । उसके पूर्वार्द्ध में अज्ञातवास के पहले की कथा है और उत्तरार्द्ध में विराटनगर में उनके अज्ञातवास की कथा है । इस तरह "प्रच्छन्न" की कथा महाभारत के वनपर्व तथा विराट पर्व के कुछ अंशों के आधार पर निर्मित हुई है । उपन्यास का प्रारंभ गांधारी और शकुनि के वार्तालाप से होता है । गांधारी शकुनि से कहती है कि वह उसके पुत्रों को अधर्म के मार्ग पर ले जा रहा है, अतः उसे अब गांधार लौट जाना चाहिए । यथा -- "मैं तुमसे तर्क करना नहीं चाहती । ... केवल इतना कहना चाहती हूं कि तुम दुर्योधन को उपलब्धियों की मृगतृष्णा में उलझाकर मृत्यु की ओर मत धकेलो । विकास के छद्म मार्ग से उसे विनाश के मार्ग पर मत ले जाओ । ... तुमने उसके मन में ईर्ष्या की अग्नि जलाई, तुमने उसे धर्म के मार्ग से विरत किया, तुमने उसे नारी का अपमान करना सिखाया । ... ये सारे मार्ग विनाश के द्वार तक ही जाते हैं । तुमने उसकी हीनतर वृत्तियों को प्रोत्साहित किया । उसे पशु बनाया । ... दुर्योधन को कामनाओं की सूली पर मत टांगो, अन्यथा हस्तिनापुर में तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं होगा । विवाद अथवा प्रतिवाद की अनुमति नहीं है तुम्हें । जाओ ।" 107 शकुनि को गांधारी की इस बात से दुःख तो अवश्य पहुंचता है, किन्तु वह अपनी कुप्रवृत्ति से विवश है और इस प्रकार की योजनाओं को बनाने में प्रयत्नशील रहता है जिससे कौरव व पांडव परस्पर सदैव लड़ते रहें ।

पांडव द्वैतवन में बारह वर्ष का कष्टपूर्ण वनवास भोग रहे हैं, तभी शकुनि, दुर्योधन और कर्ण पांडवों को अपने वैभव-विलास के प्रदर्शन

से दग्ध और पीड़ित करने के लिए एक योजना बनाते हैं । अपनी उस योजना को कार्यरत करने के उद्देश्य से वह समंग नामक ग्वाले का आश्रय लेते हैं , किन्तु कौरवों की दुष्ट चाल नहीं चल सकती और उल्टे उनको मुंह की खानी पड़ती है । उस वन की रक्षा करने वाले गन्धर्व पांडवों के हितेच्छु थे , फलतः वह दुर्योधन , उसकी पत्नी तथा उसके अन्तःपुर के समस्त स्त्री-समुदाय को बंदी बना लेता है , जिसे बाद में भीम और अर्जुन छुड़ा लाते हैं और इस प्रकार दुर्योधन को यहां भी अपमानित और लज्जित होना पड़ता है । इस प्रसंग में युधिष्ठिर और द्रौपदी के बीच जो वार्तालाप होता है और उसमें धर्मराज का जो कथन है उससे उनके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है -- " तुम्हारी पीड़ा मैं समझता हूं पांचाली । किन्तु गन्धर्वों द्वारा किए गए नारीत्व के अपमान से दुर्योधन द्वारा किए हुए नारीत्व के अपमान का प्रतिकार कैसे हो जाएगा ? दंडित दुर्योधन को होना चाहिए कि उसकी रानियों को ? ... पांचाली । हमारा व्यवहार धर्म से परिचालित होना चाहिए , दुर्योधन जैसे लोगों के अधर्म कृत्यों से उपजी प्रतिक्रियाओं से नहीं । अन्यथा दुर्योधन जो कुछ आज करेगा , वही हम कल करेंगे । उसमें और हममें कोई भी अन्तर नहीं रह जाएगा ।" [108]

गांधर्व चित्रसेन तो यहां तक कहता है कि इस प्रसंग का उपयोग करते हुए कौरवों से एक वर्ष का अज्ञातवास रद करवाया जा सकता है , उनको इन्द्रप्रस्थ लौटाने के लिए कहा जा सकता है । तब अर्जुन चित्रसेन से कहता है --" धर्मराज चाहते तो द्यूतसभा में अपना राज्य त्यागते ही नहीं । वे चाहते तो सम्मुख युद्ध में अपना राज्य धार्तराष्ट्रों से लौटा लेते । कृष्ण ने कहा था कि यादव सेनाएं कौरवों से युद्ध कर , पांडवों का राज्य दुर्योधन से छीनकर धर्मराज की गोद में डाल देंगीं । ... किन्तु धर्मराज ने सबको एक ही उत्तर दिया था कि वे अपना वचन भंग नहीं करेंगे , अपना धर्म नहीं छोड़ेंगे। तुम इन दोनों स्थितियों का अंतर समझते हो ? उन दो व्यक्तियों में

भेद कर सकते हो , जिनमें से एक भोग और सत्ता के लिए जीवन धारण करता है , और दूसरा अपने वचन के निर्वाह के लिए ; एक अत्यन्त स्थूल धरातल पर जीता है , दूसरा अत्यन्त सूक्ष्म पर । एक सांसारिक भोग के लिए शरीर धारण करता है , दूसरा धर्म का आचरण करने के लिए ।" [109]

जैसा कि ऊपर कहा गया है "प्रच्छन्न" के पूर्वार्द्ध की कथा महाभारत के वनपर्व पर आधारित है । यहां दुर्योधन की पांडवों के प्रति जो ईर्ष्या है वह अपनी चरमावस्था पर पहुंच जाती है और वह इस वनवास में भी किसी-न-किसी तरह उनको पीड़ित करने का प्रयत्न करता रहता है , किन्तु हर समय असफलता से ही उसका साक्षात्कार होता है । उक्त प्रसंग के बाद भी वह अपनी दुष्टता से बाज नहीं आता है और पांडवों को पीडित करने का एक नया मार्ग वह ढूंढता है । वह बहुत कष्ट उठाते हुए ऋषि दुर्वासा की सेवा करता है । उसकी सेवा से जब ऋषि प्रसन्न होकर उसे वर मांगने के लिए कहते हैं , तब वह कहता है कि पांडवों के आश्रम में भी वह अपने दश हजार शिष्यों के दल के साथ पहुँचें और उन्हें भी वे अपनी सेवा का अवसर दें और उनको कृतार्थ करें । [110]

ऊपर-ऊपर से देखने पर तो प्रतीत होगा कि दुर्योधन सुधर गया है और अपने भाइयों का कल्याण चाहता है , किन्तु यह उसकी एक बड़ी ही सोची-समझी कुटिल चाल है । ऋषि दुर्वासा समग्र पौराणिक साहित्य में अपने क्रोध और शाप देने की प्रवृत्ति के कारण बड़े कुख्यात हैं । दुर्योधन सोचता है कि द्वैतवन में साधनहीन पांडव उनके दश हजार शिष्यों के खान-पान की व्यवस्था नहीं कर सकेंगे , फलतः ऋषि उन पर क्रोधित होकर उनको कोई बड़ा अनिष्टकारी शाप दे डालेंगे । द्रौपदी बहुत चिन्तित होती है , किन्तु यहां भी ऐन मौके पर कृष्ण आकर बाजी संभाल लेते हैं । [111] इसी कथा-खण्ड में एक बार पांडवों की अनुपस्थिति में सिन्धु-नरेश जयद्रथ द्रौपदी का अपहरण करने की

चेष्टा करता है , किन्तु वहां भी उसे अपमानित होना पड़ता है । यथा– "जाओ सिंधुराज ! हमारी ओर से तुम मुक्त हो ... भीम ने ठीक ही कहा है । यदि तुमने फिर ऐसा कोई प्रयत्न किया , तो वह तुम्हारा अन्त ही होगा । तब मैं भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकूंगा । जाओ , भगवान तुम्हें सद्‌बुद्धि दें । ... जयद्रथ सिर झुकाए हुए , जितनी जल्दी संभव था , वहां से बाहर निकल गया ।" [12]

इस प्रसंग के बाद वह प्रसिद्ध और बहुचर्चित यक्ष-प्रश्न आरंभ होता है , जिनका समाधान युधिष्ठिर करते हैं और अपने भाइयों को उस तंद्रावस्था से मुक्त कराते हैं । "यक्ष प्रसन्न होकर हंसा , "तुमने अर्थ और काम से भी अधिक , दया और समता का आदर किया । तुमने सिद्ध किया है कि तुम्हें शास्त्र का ज्ञान ही नहीं है , तुम उस पर आचरण भी कर रहे हो । इसलिए तुम्हारे सभी भाई जीवित हो जाएंगे ।" [13]

इसके बाद पांडवों का एक वर्ष का अज्ञातवास प्रारंभ होता है , जिसे हम "प्रच्छन्न" के उत्तरार्द्ध की कथा कह सकते हैं । पांचों पांडव द्रौपदी सहित वेशभूषा तथा नाम बदलकर मत्स्य-नरेश विराट के यहां शरण लेते हैं । युधिष्ठिर "कंक" , भीम "पैरोगव बल्लभ " , अर्जुन "बृहन्नला" नामक किन्नर , नकुल "ग्रंथिक " , सहदेव "तंतिपाल" और द्रौपदी "सैरंध्री " नाम धारण कर लेते हैं और अपने निजी गुप्त प्रयोग के लिए जय , जयंत , विजय , जयत्सेन और जयद्बल रख लेते हैं । [14] युधिष्ठिर विराटराज के द्यूत-शिक्षक होते हैं । वनवास में ऋषि बृहदाश्व से जो विद्या सीखी थी वह यहां काम आ गयी । भीम रसोई बनाने का काम संभालते हैं । उन्हें भी अपना मनचीता काम मिल जाता है । अर्जुन बहन्नला के रूप में विराटराज की पुत्री उत्तरा को नृत्य सीखाने का काम करता है । अमरावती में गंधर्व चित्रसेन से जो विद्या सीखी थी वह यहां काम आ रही थी । नकुल अश्वशाला और सहदेव गोशाला का काम संभाल लेते हैं । द्रौपदी अंतःपुर में दासी बनकर रहती है । अज्ञात–

वास के दश महीने तो निर्विघ्न रूप से समाप्त हो जाते हैं, पर महारानी सुदेष्णा के भाई कीचक के आने पर उनकी योजना में व्यवधान आ जाता है। कीचक की लंपट वृत्ति के कारण सैरंध्री बनी पांचालीके सतीत्व पर संकट के बादल मंडराने लगते हैं। वह रात-दिन सैरन्ध्री को छेड़ने की कोशिश करता है। जब पानी सर से ऊपर चढ़ने लगता है तब भीम को कीचक का वध करना पड़ता है। उधर दुर्योधन पांडवों को उनके अज्ञातवास में ही खोज निकालनेके प्रयत्नों में जी-जान से लगा हुआ है। ऐसे में उसे कीचक के वध की सूचना मिलती है। कीचक बहुत ही शक्तिशाली था। जिस प्रकार उसका वध हुआ था, उसे करने में भीम ही सक्षम था। अतः दुर्योधन को संदेह होता है कि हो न हो पांडव विराटनगर में ही होने चाहिए। अतः विराट की अनुपस्थिति में ही वह उसके राज्य पर आक्रमण कर देता है। तब बृहन्नला का रूप धारण किए हुए अर्जुन विराट-पुत्र उत्तर के साथ समरभूमि पर पहुंचकर दुर्योधन की सेना के साथ युद्ध करता है और दुर्योधन, कर्ण, पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण आदि उनके सभी महारथियों और अतिरथियों को पराजित करता है। [115] यहां पांडवों के अज्ञातवास का रहस्य खुल जाता है, किन्तु दुर्योधन के हाथ यहां भी पराजय लगती है, क्योंकि तब तक में अज्ञातवास की अवधि समाप्त हो चुकी थी। राजा विराट तथा सुदेष्णा की परम सुन्दरी पुत्री उत्तरा एवं अर्जुन पुत्र वीर अभिमन्यु के विवाह-प्रस्ताव के साथ उपन्यास का अंत होता है और सारी प्रच्छन्नता छंट जाती है और सबकुछ प्रत्यक्ष हो जाता है। सत्य ही" दुर्योधन के सुख में प्रच्छन्न रूप से बैठा है दुःख, और युधिष्ठिर की अव्यावहारिकता में प्रच्छन्न रूप से बैठा है धर्म। यह माया की सृष्टि है। जो प्रकट रूप से दिखाई देता है, वह वस्तुतः होता नहीं है; और जो वर्तमान है वह कहीं दिखाई नहीं देता। ... पांडवों के शत्रुओं में प्रच्छन्न मित्र कहां थे और मित्रों में प्रच्छन्न शत्रु कहां पनप रहे थे? ऐसे ही अनेक प्रश्नों को समेटकर आगे बढ़ती है, "महासमर" के इस छठे खण्ड की "प्रच्छन्न" कथा।" [116]

§7§ प्रत्यक्ष / महासमर भाग-7 / :
==========================

"प्रत्यक्ष" चार सौ छप्पन पृष्ठ और चौवालीस अध्यायों का एक बृहद्काय उपन्यास है । यहां बहुत-सी स्थितियां लगभग स्पष्ट स्पष्ट और प्रत्यक्ष हो जाती हैं । प्रच्छन्नता के बादल छंट जाते हैं और सबकुछ बहुत स्पष्ट हो जाता है । उपन्यास का प्रारंभ अभिमन्यु के विवाह-प्रसंग से होता है और उसका अन्त "महासमर" के दशवें दिन के व्यतीत हो जाने के साथ होता है । भीष्म पितामह के निर्देश पर ही शिखंडी को आगे करके अर्जुन उनके शरीर को बाणों से बिंध डालता है । उनको प्रायः मरणासन्न अवस्था में युद्धभूमि से हटाया जाता है । उपन्यास का पूर्वार्द्ध युद्ध की तैयारियों को निरूपित करता है । 34 वें अध्याय से युद्ध का प्रारंभ होता है ।

प्रस्तुत ~~अध्याय×में×~~ उपन्यास में उद्योगपर्व और भीष्म पर्व की कथा को डा. कोहली ने उपन्यस्त किया है । अज्ञातवास पूरा होने के उपरान्त भी दुर्योधन पांडवों को उनका इन्द्रप्रस्थ का राज्य देने के तैयार नहीं होता । विष्टि के तमाम प्रयत्न निष्फल होते हैं । भीष्म, विदुर , व्यास , परशुराम , कृष्ण आदि तमाम महानुभाव युद्ध को टालने के लिए सभी संभव प्रयत्न करते हैं ; किन्तु दुर्योधन टस से मस नहीं होता । आनृशंसता , धर्म और न्याय का आग्रही युधिष्ठिर केवल पांच गांवों पर भी संतुष्ठ होने की तैयारी बताते हैं , किन्तु दुर्योधन पर तो ~~xxxx~~ मानो युद्धोन्माद छाया हुआ है । पांडव अपने सारे मित्र-राज्यों को युद्ध में सहायता की अपील करते हैं , कृष्ण और यादवों से भी ; किन्तु बीच के "अन्तराल" में बहुत कुछ घटित होता है और कई समीकरण बदल जाते हैं । जो कृष्ण वनवास के पूर्व तक यह कहते थे कि युधिष्ठिर केवल अनुमति-भर दे दें , तो अकेले यादव ही दुर्योधन का वध करके उनको उनका राज्य वापस दिलवा देंगे , वे इतने अकेले पड़ जाते हैं कि "महासमर" में अकले पांडवों के पक्ष में शस्त्र न ग्रहण करने की प्रतिज्ञा के साथ अर्जुन का सारथ्य करने

पहुंचते हैं । यादवों की पूरी नारायणी सेना कौरवों के पक्ष में लड़ती है । बलराम तटस्थ है । कृतवर्मा जो कृष्ण के समधी हैं और जो कौरवों की राजसभा से कृष्ण को सुरक्षित बाहर निकाल ले आये थे , इस महासंग्राम में कौरवों की ओर से लड़ रहे हैं । यह कैसा युद्ध है , कैसा संग्राम है ? जिस युधिष्ठिर के राज्य के लिए यह युद्ध होना था , वह युधिष्ठिर ही इस युद्ध के पक्ष में नहीं था । जिस अर्जुन के भरोसे पांडव यह युद्ध लड़ना चाहते थे , वह अर्जुन ही युद्ध के आरंभ में विषादग्रस्त होकर गांडीव त्याग कर रथ के पिछवाड़े बैठ जाता है । इसी खण्ड में है कृष्ण की गीता , भगवद्‌गीता । एक उपन्यास में गीता, जो गीता भी है और उपन्यास भी ।[117]

इस खण्ड में कुन्ती कृष्ण को कर्ण के जन्म का वास्तविक इतिहास बताती है । कृष्ण कुन्ती को सलाह देते हैं कि पहले वे कर्ण से बात करेंगे और उसके बाद वह कर्ण से भेंट करेंगी । तदनुसार कुन्ती कर्ण से मिलती है । प्रथम तो उसके मन में आक्रोश पैदा होता है , किन्तु बाद में कुन्ती की बातों को सुनने के पश्चात , उसका आक्रोश कम होता है और वह कुन्ती को "माता" कहकर सम्बोधित करता है । वह बहुत ही व्यथित होकर कुन्ती से कहता है कि उन्होंने यह बात कहने में बहुत देर कर दी और अब वह कुछ नहीं कर सकता । दुर्योधन के उस पर इतने ऋण हैं कि वह इस निर्णायक युद्ध में उसके साथ बेईमानी नहीं कर सकता , किन्तु वह अपनी माता को एक वचन अवश्य देता है कि अर्जुन के अतिरिक्त वह किसी अन्य पांडव को नहीं मारेगा , और इसलिए दोनों स्थितियों में उसके पांच पुत्र रहेंगे ।[118]

इस खण्ड में अर्जुन के कृष्ण-प्रेम की परीक्षा भी हो जाती है । उपप्लव्य से कृष्ण द्वारका जाते हैं । उन्हें ज्ञात है कि युद्ध में सहायता मांगने दुर्योधन भी अवश्य आयेगा । इधर से अर्जुन भी आयेगा । दुर्योधन पहले पहुंचता है , पर अपने अभिमान में वह कृष्ण के सिरहाने बैठता है । अर्जुन कुछ बाद में पहुंचता है पर कृष्ण के पैताने की ओर बैठता है । कृष्ण अपनी सहायता को दो वर्गों में रखते हैं -- एक में

यादवों की पूरी नारायणी सेना और दूसरे वर्ग में केवल कृष्ण और वह भी शस्त्र न धारण करने की प्रतिज्ञा में आबद्ध । कृष्ण कहते हैं कि पहले अर्जुन मांगेगा क्योंकि मैंने पहले उसको देखा है और दूसरे वह दुर्योधन में से वय में भी छोटा है । दुर्योधन पहले तो विह्वल हो उठता है कि कृष्ण यहां भी अपनी राजनीति खेल गया , किन्तु उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता , जब अर्जुन केवल कृष्ण को अपने पक्ष के लिए मांगता है । दुर्योधन तो यही चाहता था ।[118] यहां अर्जुन की कृष्ण के प्रति जो निष्ठा है वह प्रमाणित हो जाती है । वह भलीभांति जानता है कि जहां कृष्ण होंगे , धर्म वहीं होगा , और जहां धर्म होगा वहां जय होगी ।

कृष्ण ने एकाधिक बार अपनी सखी कृष्णा को वचन दिया था कि उसके साथ न्याय होगा । जिन पापियों ने उसको अपमानित किया है , वे अवश्य दंडित होंगे । फिर भी संधि का प्रस्ताव लेकर वे हस्तिनापुर जाते हैं । द्रौपदी के वाक्प्रहार पर कृष्ण तनिक भी उत्तेजित हुए बिना उसे कहते हैं —' मैं शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर जा रहा हूं , क्योंकि हम शांति नष्ट कर पृथ्वी को रक्त-स्नान के लिए बाध्य करना नहीं चाहते । ... किन्तु शान्ति का आधार तो न्याय और धर्म होता है कृष्णे । धर्म की हत्या करxकरx करके तो शान्ति स्थापित नहीं होती । संसार का कोई भी अपराध क्षम्य हो सकता है किन्तु नारीत्व का अपमान कर कोई अपराधी दण्ड न पाए, यह संभव नहीं है । इस संसार को धारण करने वाला तत्व है -- धर्मx धर्म । उस धर्म का विश्वास करो । पाप क्षय का प्रतिनिधि है , धर्म निर्माण का । न यह सृष्टि क्षय का पक्ष लेती है , न इसका स्रष्टा । आततायी अपने पाप का दण्ड न पाए , यह संभव ही नहीं है । ... जहां इतना धैर्य धारण किया है सखि । वहीं मेरे हस्तिनापुर से लौट आने तक स्वयं को संयत रखो । तुम्हारे ये अश्रु अनुत्तरित नहीं रहेंगे ।'[119] वस्तुतः कृष्ण चाहते ही नहीं थे कि संधि हो । अन्यथा कृष्ण चाहते तो संधि होकर रहती । क्योंकि यह युद्ध जितना पांडवों

का था , उतना ही कृष्ण का भी था ।

कृष्ण कितने बड़े राजनीतिज्ञ हैं वह भी यहां प्रत्यक्ष हुआ है । कृष्ण की नारायणी सेना कौरवों के पक्ष में लड़ रही है , क्या उनकी युद्ध-निष्ठा खंडित नहीं रहेगी ? कृतवर्मा और सात्यकि को पहले ही सावधान करके कौरव-सभा में जाना इस बात का द्योतक है कि कृष्ण को दुर्योधन की संभावित चाल पहले से ही ज्ञात थी और उसकी काट भी उन्होंने पहले से ही सोच रखी थी । पहले द्रुपद के दूत को भेजना, फिर कृष्ण का स्वयं जाना , यह सब क्या है ? कृष्ण भलीभांति जानते हैं कि युद्ध होगा , भीष्म और द्रोण और कृपाचार्य न चाहते हुए भी अपने-अपने कारणों से कौरवों के पक्ष में लड़ेंगे , किन्तु उनकी निष्ठा और नैतिकता पर प्रहार आवश्यक थे जो कृष्ण ने किये । इस प्रकार आधा युद्ध तो कृष्ण इस प्रकार ही जीत जाते हैं । क्योंकि लड़ने वाला यदि जानता है कि वह धर्म के पक्ष में नहीं लड़ रहा तो उसका जुस्सा तो कम होगा ही होगा । रही-सही कसर युद्ध के आरंभ में युधिष्ठिर के के उस उद्बोधन ने पूरी कर दी जिसमें धर्म के पक्ष में लड़ने-वाले तमाम-तमाम लोगों को वह आमंत्रित करता है और पितामह भीष्म तथा द्रोण को प्रणाम करके उनके आशीर्वाद की कामना करता है । युद्ध के आरंभ में अर्जुन का विषाद-योग भी आवश्यक है , क्योंकि यदि यह न होता तो कृष्ण की विराटता का ज्ञान उसे कैसे होता । जिसने कृष्ण का यह रूप देख लिया हो उसकी क्या पराजय हो सकती है । भीष्म की तीन प्रतिज्ञाओं ने पांडवों के विजय-मार्ग को प्रशस्त कर ही दिया था कि वे किसी पांडव का वध नहीं करेंगे , वे किसी स्त्री या कभी स्त्री रह चुके व्यक्ति पर वार नहीं करेंगे और उनके सेनापतित्व काल में कर्ण नहीं लड़ेगा ।[120] इस प्रकार देखा जाए तो न केवल इस खण्ड की घटनाएं प्रत्यक्ष है , साफ हैं , पारदर्शक हैं ; अपितु युद्ध का परिणाम भी प्रत्यक्ष है कि विजयश्री पांडवों के पक्ष में जायेगी ।

§8§ निर्बन्ध / महासमर भाग-8 / :

डा. नरेन्द्र कोहली का "निर्बन्ध" उपन्यास 528 पृष्ठ और 43 अध्यायों में निबद्ध है । "प्रच्छन्न" के बाद यह दूसरा उनका बृहदकाय उपन्यास है । आठ खण्डों में प्रकाशित होने वाले उनके "महासमर" का यह आठवां और अंतिम खण्ड है । इस खण्ड के साथ यह उपन्यासमाला पूर्ण हुई , जिसके लेखन में लेखक को पन्द्रह वर्ष लगे हैं । इसकी कुल पृष्ठ-संख्या 3632 हैं । कदाचित् यह हिन्दी का सबसे बड़ा बृहदाकार उपन्यास है , जो रोचकता , पठनीयता और इस देश की परंपरा के गंभीर चिंतन को एक साथ समेटे हुए हैं ।

इसकी कथा द्रोण पर्व से शुरू होकर शांति पर्व तक चलती है । कथा का अधिकांश भाग तो युद्ध क्षेत्र से होकर ही अपनी यात्रा करता है । वस्तुतः कुरुक्षेत्र में खेला गया वह महासंग्राम तो "प्रत्यक्ष" के उत्तरार्द्ध से शुरू हो जाता है । महासंग्राम के प्रथम दश दिनों की कथा "प्रत्यक्ष" में समाहित हो गई है । "निर्बन्ध" की कथा युद्ध के ग्यारहवें दिन से शुरू होती है । युद्ध के दशवें दिन पितामह भीष्म स्वेच्छा से अर्जुन के बाणों से मरणासन्न हो जाते हैं । युद्ध-क्षेत्र से उनको हटा लिया जाता है , परन्तु कौरवों के स्कन्धावार में , दूसरे आठ दिन तक वे एक प्रकार से बाणों की शैया पर लेटे रहते हैं , क्योंकि उत्तरायण-पक्ष में ही वे अपनी मृत्यु चाहते थे । अतः उपन्यास का अन्त उनकी मृत्यु के साथ होता है । " हां ! उत्तरायण में । ... मैं उस समय बिदा होना चाहता हूं , जब मेरा मन प्रसन्न हो , निर्मल हो । मै उस समय बिदा होना चाहता हूं , जब मेरी बुद्धि प्रकाशित हो रही हो । मैं अवसाद में , रोते हुए , आसक्ति के मेघों के अज्ञान में लिपटा हुआ , इस संसार से बिदा होना नहीं चाहता । मैं मुक्त होकर यहां से जाना चाहता हूं [illegible] हूं , ताकि लौटकर फिर न आना पड़े । आजीवन स्वयं को बांधे रखा है ,

अब निर्बन्ध होकर जाना चाहता हूं ।"[121]

यह भी एक ध्यान देने योग्य बात है कि इस उपन्यास-श्रृंखला का प्रारंभ "बंधन" से हुआ था और उसकी समाप्ति "निर्बन्ध" पर हो रही है । इस प्रकार यह बंधन से मुक्ति की यात्रा है , माया से मोक्ष तक की यात्रा है । "बंधन" का प्रारंभ भीष्म से हुआ था , और उपन्यास-श्रृंखला का अन्त भी एक तरह से भीष्म के साथ ही हो रहा था । वहां भीष्म प्रतिज्ञा के एक बंधन में बंधे थे । उस बंधन के कारण सांसारिक मोह- माया के अनेकानेक बंधनों में उन्हें बंधना पड़ा । धर्म , मर्यादा , कुल-रक्षा के नाम पर उनको कई गलत समझौते करने पड़े । उपन्यास-श्रृंखला के अन्त में पांडवों की विजय , धर्म की विजय के साथ , वे चैन की नींद , चीर-निद्रा , में सो जाते हैं ।

उपन्यास का प्रारंभ युद्ध के ग्यारहवें दिन से होता है । पितामह के हट जाने पर गुरु द्रोण को सेनापति बनाया जाता है । दुर्योधन बारबार उन पर दबाव डालकर इस बात पर जोर दे रहा है कि वे किसी तरह युधिष्ठिर को बन्दी बनाकर उसके सामने प्रस्तुत कर दें । दुर्योधन की इस योजना को सफल बनाने के लिए त्रिगर्तराज सुशर्मा को संशप्तक युद्ध के लिए प्रेरित किया जाता है ।[122] कृष्ण साफ मना करते है , किन्तु अर्जुन का क्षत्रिय-धर्म आड़े आता है और वह सुशर्मा के उस आह्वान का स्वागत करते हुए संशप्तक युद्ध के लिए तैयार होता है । युधिष्ठिर बंदी ही होने वाले थे कि अर्जुन ऐन मौके पर आ जाता है , क्योंकि सुशर्मा दिनभर टिक नहीं पाता है । इसमें सत्यजित और वृक मारे जाते हैं ।[123] युधिष्ठिर को बन्दी बनाने में गुरु सफलकाम नहीं होते तो यह निश्चित किया जाता है कि पांडव पक्ष का कोई महारथी धराशायी होना चाहिए । युद्ध के तेरहवें दिन सुशर्मा पुनः संशप्तक युद्ध का आह्वान देता है । उसका प्र यत्न युद्ध करना कम , अर्जुन को अधिक से अधिक युद्धक्षेत्र से दूर रखने का रहता है । अर्जुन की उस अनुपस्थिति का लाभ उठाते हुए गुरु द्रोण चक्रव्यूह -युद्ध का आयोजन

करते हैं । चक्रव्यूह का युद्ध कृष्ण , अर्जुन , प्रद्युम्न और गुरु द्रोण को ही ज्ञात था । पांडव पक्ष में अर्जुन के अतिरिक्त इसका ज्ञान किसीको नहीं था । अतः उनकी शिविर में निराशा छा जाती है , किन्तु तभी अभिमन्यु कहता है कि उसे चक्रव्यूह भेदना आता है , उससे बाहर ××××× निकलने का ज्ञान उसे नहीं था । महाभारत की कथा में तो यह कहा गया है कि अभिमन्यु जब सुभद्रा की कोख में था , तभीसे उसने इसको सीख लिया था । किन्तु नरेन्द्र कोहली ने इस मिथक कथा का परिशोध इस रूप में किया है कि पांडवों के वनवास के समय सुभद्रा जब जब द्वारका रहती है तभी उसने इस व्यूह का ज्ञान अर्जित किया था । किन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया व्यूह से बाहर निकलने का ज्ञान उसे नहीं था । युधिष्ठिर तथा पांडव यह तय करते हैं कि यदि अभिमन्यु चक्रव्यूह भेदने में सफल हो गया तो आगे का युद्ध वे संभाल लेंगे । परन्तु ऐसा नहीं हो पाता है । सिन्धुराज जयद्रथ उस दिन के युद्ध में एक अभेद्य प्राचीर बन जाते हैं और पांडवों को किसी तरह दिन-भर रोके रहने में सफल हो जाते हैं । दूसरी तरफ चक्रव्यूह के तमाम नियमों की परवाह न करते हुए द्रोण , अश्वत्थामा, बृहद्-बल , कर्ण , कृपाचार्य , कृतवर्मा , शकुनि सब मिलकर अभिमन्यु का वध कर देते हैं ।[124] हालांकि इस युद्ध में अभिमन्यु दुर्योधन पुत्र लक्ष्मण सहित कई कौरव योद्धाओं का संहार करता है ।

कृष्ण किसी तरह सुभद्रा को शान्त करते हैं ।××××× अर्जुन जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा लेते हैं कि सूर्यास्त से पहले यदि जयद्रथ का वध नहीं कर पाये तो स्वयं अग्निदाह देकर मृत्यु के शरण में चले जायेंगे । कृष्ण अर्जुन की इस प्रतिज्ञा से व्यथित व चिंतित होते हैं । यहां भी डा. कोहली ने इससे जुड़ी मिथक कथा का परिशोध किया है । यद्यपि गुरु द्रोण जयद्रथ का बचाव करने की हर संभव कोशिश करते हैं , किन्तु अंततः अर्जुन उसका वध करने में सफल हो जाता है ।[125] घटोत्कच अलंबुश नामक राक्षस का वध करता है ।[126] उसके बाद अश्वत्थामा नामक हाथी को मारकर यह प्रचारित किया जाता है कि अश्वत्थामा का वध हो गया । वह प्रसिद्ध "नरो वा कुंजरो वा " प्रसंग यहां

आता है । पुत्रशोक से व्यथित होकर गुरु द्रोण शस्त्र त्याग कर बैठ जाते हैं, तब धृष्टद्युम्न अपने खडग से उनका वध कर देता है ।[127] कर्ण सेनापति होते हैं । शल्य उसका सारथ्य करके, बार-बार उसका तेजोवध करके , ध्यान भंग करके, वाक्‌बाण चलाकर एक प्रकार से पांडवों का ही हित करते हैं । दुःशासन की छाती फाड़कर भीम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करता है ।[128] कर्ण का रथ फंस जाता है । वह रथ से नीचे उतरता है । उस समय आंजलिक बाण चलाकर अर्जुन उसका वध कर देता है ।[129] शकुनि-पुत्र उलूक और शकुनि मारे जाते हैं ।[130] दुर्योधन द्वैपायन सरोवर में छिप जाता है । बलराम की अध्यक्षता में भीम और उसके बीच द्वन्द्व-गदा-युद्ध होता है समंतपंचक के पास , जिसमें कृष्ण के संकेत पर नियमों की चिन्ता न करके भीम दुर्योधन की जंघाओं को चूर-चूर कर देता है । [131] उसे मरणासन्न अवस्था में छोड़कर पांडव अपनी शिविर में आ जाते हैं । कृपाचार्य , कृतवर्मा और अश्वत्थामा जो बच गए हैं ; दुर्योधन से मिलते हैं । दुर्योधन अश्वत्थामा को अपना अंतिम सेनापति नियुक्त करता है । युद्ध लगभग समाप्त हो गया है । अतः पांडव पक्ष कुछ असावधान हो जाता है । उसका लाभ लेते हुए अश्वत्थामा धृष्टद्युम्न , शिखंडी और द्रौपदी के पांचों पुत्रों का सुषुप्तावस्था में वध कर देता है । [131] द्रौपदी पहले तो अश्वत्थामा के मस्तक की मांग करती है, किन्तु अन्ततः उसके मस्तक में स्थित मणि को लेकर वह संतुष्ट हो जाती है । अश्वत्थामा को घृणित-गर्हित-शापित जीवन व्यतीत करने छोड़ दिया जाता है ।[132] गांधारी शोक-संतप्त अवस्था में कृष्ण को शाप देती है, परंतु कृष्ण उसके मन का समाधान करते हैं । युधिष्ठिर उन दोनों को आश्वस्त करते हैं । अंत में मृत्युशैया पर लेटे पितामह से सब मिलने जाते हैं और कृष्ण के सान्निध्य में भीष्म पितामह अपने प्राण त्यागते हैं । [133]

युद्ध में दोनों पक्षों का काफी नुकसान होता है । इरावान , अभिमन्यु , घटोत्कच , युयुत्सु के अतिरिक्त सभी कौरव , द्रौपदी के पिता , भाई , पुत्र आदि सब मारे जाते हैं । इस प्रकार अठारह दिनों

का यह "महासमर" एक विषादयुक्त वातावरण में समाप्त होता है । यहां भी डा. कोहली ने अनेक मिथकों को तोड़ा है । शांति पर्व के अन्त में भीष्म तो बंधनमुक्त हो ही जाते हैं । पांडवों के भी सारे बंधन टूट गए हैं । उनके सारे बाहरी शत्रु मारे गए हैं , अपने संबंधियों और प्रियजनों में से भी अधिकांश को जीवनमुक्त होते उन्होंने देखा है । पांडवों के लिए भी माया का बंधन टूट गया है ।" अब वे उस मोड़ पर आ खड़े हैं , जहां से स्वर्गारोहण भी कर सकते हैं और संसारारोहण भी । प्रत्येक चिंतनशील मनुष्य के जीवन में एक स्थल वह आता है ; जब उसका बाहरी महाभारत समाप्त हो जाता है और वह उच्चतर प्रश्नों के आमने-सामने आ खड़ा होता है । पाठक को उसी मोड़ तक ले आया है "महासमर" का यह खण्ड - निर्बन्ध ।" [134]

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन की प्रक्रिया के द्वारा हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं —

(1) महाभारत भारतीय मनीषा का धर्मशास्त्र , न्यायशास्त्र और समाजशास्त्र है । उसमें वह सब कुछ है , जो किसी न किसी रूप में हमारे चारों ओर घटित हो रहा है । अतः "यन्न भारते तन्न भारते" की उक्ति सार्थक प्रतीत होती है ।

(2) डा. कोहली ने महर्षि वेदव्यास द्वारा प्रणीत महाभारत का ही अनुसरण किया है । किन्तु उन्होंने कथा-दृष्टि से और औपन्यासिक दृष्टि से स्वयं को कौरवों-पांडवों की कथा तक सीमित रखा है और अन्य अनेक अवान्तर कथाओं को छोड़ दिया है ।

(3) यह एक उपन्यास-श्रृंखला है । प्रत्येक उपन्यास अपने आप में स्वतंत्र होते हुए भी , उस श्रृंखला की एक कड़ी भी है । प्रथम उपन्यास "बंधन" है , उस बंधन के कारण मनुष्य अपने अधिकारों के लिए सचेष्ट हो जाता है । यहां से शुरू होती है "अधिकार" की लड़ाई । अधिकार के प्रयत्न । उसके लिए व्यक्ति "कर्म-" की ओर उन्मुख होता

है । किन्तु ध्यान यह रहना चाहिए कि हमारा प्रत्येक कर्म "धर्म" युक्त हो । धर्मयुक्त रीति से प्रगति करने के लिए एक "अन्तराल" की जरूरत रहती है । सामान्यजनों में भी कई बार कहा जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एक "दशका" आता है । "अंतराल" पांडवों के जीवन में आया हुआ वह दशका है जिसके कारण विद्या , शास्त्र , शस्त्र , अध्यात्म आदि तमाम क्षेत्रों में प्रगति करते हुए , "महासमर" हेतु वे प्रायः अजेय हो जाते हैं । शक्तियों को छिपाना पड़ता है , अतः "प्रच्छन्न" आता है । पर युद्ध के पहले , कई बार मृत्यु के पहले , सबकुछ प्रत्यक्ष हो जाता है और तब जाकर अन्ततः व्यक्ति होता है "निर्बन्ध " ।

§4§ लेखक ने महाभारत की मूल कथा के मिथक तत्वों में वैज्ञानिक , तार्किक , आधुनिक दृष्टि से कहीं-कहीं परिशोध किया है ।

§5§ ऐसे अनेक स्थल हैं जहां समसामयिक चिंतन उपलब्ध होता है , क्योंकि यह "पुरा-कथा" के साथ एक उपन्यास भी है ।

§6§ यह महाभारतकालीन समाजशास्त्र भी है । यहां विवाह के प्रकार हैं — बहुपतित्व , बहुपत्नीत्व , अनुराग-विवाह , राक्षस-विवाह , अनुलोम और प्रतिलोम विवाह , अस्थायी विवाह आदि-आदि । यहां अनेक प्रथाएं मिलती हैं । नियोगविधि की चर्चा कई स्थानों पर आयी है जिसके फलस्वरूप कानीन पुत्र , औरस पुत्र , क्षेत्रज पुत्र जैसे शब्द हमें मिलते हैं । युद्ध के कुछ प्रकारों की भी चर्चा हुई है , जैसे — द्वन्द्व युद्ध , द्वैरथ युद्ध , संशप्तक युद्ध , सम्मुख युद्ध, चक्रव्यूह-युद्ध आदि-आदि ।

====== xxxxxxx =========

: सन्दर्भानुक्रम :

§1§ द्रष्टव्य : " स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में महाभारत के पात्र " : डा. जे.आर. बोरसे : पृ. 7 ।

§2§ द्रष्टव्य : हिन्दी विश्वकोश भाग- 9 : पृ. 201 ।

§3§ महाभारत परिचय : गीता प्रेस गोरखपुर : पृ. 107 ।

§4§ विश्वकोश खण्ड-6 : पृ. 201 ।

§5§ महाभारत : आदि पर्व : 1.102-103 ।

§6§ और §7§ : वही : पृ. क्रमशः 1.266 , 1.272-273 ।

§8§ महाभारत परिचय : पृ. 132 ।

§9§ गीता रहस्य : लोकमान्य तिलक : पृ. 555 ।

§10§ भारत का प्राचीन इतिहास : डा. सत्यकेतु विद्यालंकार : पृ. 122

§11§ ए हिस्टरी आफ इण्डियन लिटरेचर : पृ. 416-417 ।

§12§ महाभारत परिचय : पृ. 81 से उद्धृत ।

§13§ वही : पृ. 81 ।

§14§ "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में महाभारत के पात्र " : पृ. 67 ।

§15§ भारतीय साहित्यकोश : सं. डा नगेन्द्र : पृ. 934 ।

§16§ महाभारत : सी. राजगोपालाचारी : प्रीफेस : पृ. 6 ।

§17§ "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में महाभारत के पात्र" : पृ. 67-68 ।

§18§ भारत ः सावित्री खण्ड : पृ. 27 ।

§19§ हिन्दी साहित्य की भूमिका : डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी : पृ. 183

§20§ महाभारत : राजाजी : पृ. 6 ।

§21§ द्रष्टव्य : भारतीय मिथक कोश : डा. उषापुरी विद्यावाचस्पति : पृ. 231-232 ।

§22§ द्रष्टव्य : भारतीय साहित्यकोश : पृ. 938-39 ।

§23§ द्रष्टव्य : "महाभारत : दक्षिण-पूर्व एशिया में " : मूल संकलन कर्ता श्री सालेह : अनुवाद- डा. चन्द्रदत्त पालिवाल : प्रस्तावना से ।

§24§ वही : कमलारत्नम् : भूमिका से ।

§25§ "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में महाभारत के पात्र " : डा. जे.आर. बोरसे : पृ. 68 ।

§26§ वही : पृ. 69 ।

§27§ महाभारत : अमृतलाल नागर : भूमिका से ।

§28§ प्रबंध काव्यों , खण्डकाव्यों तथा गीतिनाट्यों के विस्तार के लिए द्रष्टव्य : ग्रन्थ - §25§ वत् : पृ. 78-133 ।

§29§ " डा॰ भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों की भाषा : एक अनुशीलन " : शोध-प्रबंध : डा॰ अनसूया पटेल : पृ. 150 ।

§30§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : डा. त्रिभुवनसिंह : पृ. 680 ।

§31§ और §32§ : वही : पृ. क्रमशः 685 , 685-693 ।

§33§ बंधन : डा. नरेन्द्र कोहली : पुस्तक के द्वितीय मुखपृष्ठ से ।

§34§ द्रष्टव्य : वही : पृ. क्रमशः 216, 225, 248, 279, 297, 414, 420, 465, 471, 472 ।

§35§ से §39 § : वही : पृ. क्रमशः 471, 66, 178, 215, 456 ।

§40§ मानसमाला : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 22 ।

§41§ अधिकार : डा. नरेन्द्र कोहली : पुस्तक के द्वितीय मुखपृष्ठ से ।

§42§ से §50§ : द्रष्टव्य : वही : पृ. क्रमशः 33-52, 53-78, 81, 78-103, 103-383 , 318 , 329 , 348xx 379, 348 ।

§51§ कर्म : डा. नरेन्द्र कोहली : पृ. 75 ।

§52§ द्रष्टव्य : धर्म : डा. नरेन्द्र कोहली : पृ. 9 ।

§53§ कर्म : पृ. 117-118 ।

§54§ महाभारत : राजाजी : पृ. 73 ।

§55§ कर्म : पृ. 330-331 ।

§56§ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : पृ॰ 684 ।

§57§ धर्म : पृ॰ 415 ।

§58§ से §66§ : वही : पृ. क्रमशः 10, 22, 65, 76-86, 94, 95-100, 151, 177, 234-235 ।

(67) कर्म : डा. नरेन्द्र कोहली : पृ. 185 ।

(68) धर्म : डा. नरेन्द्र कोहली : पृ. 281 ।

(69) से (73) : वही : पृ. क्रमशः 305-306, 333, 377-392, 402, 414-415 ।

(74) द्रष्टव्य : वही : पृ. 342 ।

(75) से (77) : द्रष्टव्य : वही : पृ. क्रमशः 367, 232, 118-119 ।

(78) द्रष्टव्य : वही : पृ. क्रमशः 18, 26, 32, 56, 71 ।

(79) अंतराल : डा. नरेन्द्र कोहली : पृ. 104 ।

(80) द्रष्टव्य : वही : पृ. 70 ।

(81) से (85) : वही : पृ. क्रमशः 74, 83, 91, 123, 140-141 ।

(86) से (90) : वही : पृ. क्रमशः 148, 161, 162, 167, 209 ।

(91) वही : पृ. 217 ।

(92) वही : पृ. 287 ।

(93) वही : पृ. 311 ।

(94) वही : पृ. 318 ।

(95) वही : पृ. 323 ।

(96) वही : पृ. 365-368 ।

(97) वही : पृ. 91 ।

(98) वही : पृ. 91 ।

(99) वही : पृ. 146 ।

(100) द्रष्टव्य : वही : पृ. 266-267 ।

(101) वही : पृ. 323 ।

(102) नालंदा×शब्दकोश शब्दकोश : पृ. 885 ।

(103) अंतराल : पृ. 365 ।

(104) प्रच्छन्न : पृ. 614 ।

(105) वही : पृ. 614 ।

§106§ प्रच्छन्न : डा. नरेन्द्र कोहली : पृ. 615 ।

§107§ वही : पृ. 10-12 ।

§108§ वही : पृ. 82 ।

§109§ वही : पृ. 91 ।

§110§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 233 ।

§111§ वही : पृ. 250 ।

§112§ वही : पृ. 295 ।

§113§ वही : पृ. 317 ।

§114§ वही : पृ. 326-327 ।

§115§ वही : पृ. 603 ।

§116§ वही : प्रकाशकीय वक्तव्य : प्रथम मुखपृष्ठ से ।

§117§ द्रष्टव्य : प्रत्यक्ष : डा. नरेन्द्र कोहली : पृ. 347-357 ।

§118§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 309 ।

§119§ वही : पृ. 173 ।

§120§ वही : पृ. 320 ।

§121§ निर्बन्ध : डा. कोहली : पृ. 527 ।

§122§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 51 ।

§123§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 61 ।

§124§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 88 ।

§125§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 150 ।

§126§ वही : पृ. 152 ।

§127§ वही : पृ. 259 ।

§128§ वही : पृ. 381 ।

§129§ वही : पृ. 404

§130§ वही : पृ. 422-423 ।

§131§ निर्बन्ध : डा. कोहली : पृ. 494 ।

§132§ वही : पृ. 504 ।

§133§ वही : पृ. 528 ।

§134§ वही : द्वितीय मुखपृष्ठ से ।

xxxxxxxxx ======= ==== xxxxxx ===========